बदलती राहें

यज्ञदत्त



प्राप्ति-स्थान

आत्माराम एण्ड, सन्स, दिल्ली

प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक
रामा कृष्णा प्रेस,
कटरा नील दिल्ली

बदलती राहें

'जमाना बदल रहा है और जो न बदलने की कसम खाकर समय की प्रगति के सामने रुकावट बन कर आने का प्रयत्न करेंगे उन्हें समय जड़ मूल से उखाड़ कर फेंक देगा।' चौधरी रणधीरसिंह ने इस कठोर सत्य का अनुभव करते हुए समय की प्रगति का साथ देने का प्रयत्न किया। परन्तु उनके जीवन का एक मोड़ वह भी आया जहाँ उनकी बदलती हुई राह भी उनका साथ न दे सकी। मस्तिष्क ने कहा ठीक है, पग बढाओ, परन्तु हृदय का रूढिवादी चोर आत्मा को दबा कर उस पर सवारी गांठे बैठा रहा। हृदय मुक्त न हो सका। एक चौहान वंशीय चौधरी का पुत्र चमार की बालिका से विवाह करे··· और वह भी चौधरी रणधीरसिह का विजय भय्या! चौधरी साहब अपनी आँखों से नहीं देख सकते। उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह अपनी आँखों के सामने समाज और धर्म की इन शृङ्खलाओं को टूटते हुए देखें।

इतना साहस न रहते हुए भी इस त्यागी मानव ने शीला को आशीर्वाद दिया और आशीर्वाद के पश्चात् अपनी जन्मभूमि को अंतिम नमस्कार करते हुए समय की प्रगति के सम्मुख सिर झुका दिया। जीवन की बदली हुई राहों में वह कांटा न बने। वह राहें उन्होंने अपने हाथ से झाड़ू लगा कर साफ़ कर दीं।

मानव उन साफ-सुथरी राहों पर पूर्ण वेग के साथ आगे बढ़े और तोड़ दे जाति-पांति तथा रंग-रूप की शृंखलाओं को।

लेखक

लेखक की अन्य रचनाएँ :—

१. दो पहलू	उपन्यास
२. प्रेम समाधि	,,
३. इन्सान	,,
४. अंतिम चरण	,,
५. निर्माण-पथ	,,
६. महल और मकान	,,
७. बदलती राहें	,,
८. प्रबन्ध-सागर	समालोचना
९. आलोचना के सिद्धान्त	,,
१०. हिन्दी के उपन्यासकार	,,
११. आदर्श पत्र-लेखन	,,

[१]

चौधरी रणधीरसिंह जी की पुरानी हवेली के सामने वाली पक्की चौपाल-पर चौबीस घंटे सूखे उपलों का उभीना लगा रहता था। उस ओर से निकलने वाला, चाहे कोई भी राहगीर क्यों न हो, उसी का नीम की शीतल छाया, कोरे मटके का ठंडा पानी, लम्बी-लम्बी चौड़ी-चौड़ी चारपाइयाँ, हर एक जाति का हुक्का और फिर आँच तथा तम्बाकू का सुप्रबन्ध देखकर घड़ी भर के लिए मन हो ही आता था कि दोपहरी वहाँ काट कर ही आगे बढ़े। यह चौपाल हर राहगीर के लिए आराम-गाह थी।

यह व्यवस्था चौधरी रणधीरसिंह जी ने प्रचलित नहीं की थी; न जाने कब से चली आ रही थी, अपनी इसी आन-बान और शान के साथ। जो व्यवस्थाएँ और प्रथाएँ पुरखों के समय से चल रही थीं उनपर विचार करने का मानो चौधरी साहब को कोई अधिकार ही नहीं था और न उनके विषय में कुछ विचार कर वह अपने मस्तिष्क को व्यर्थ की परेशानी में ही डालना चाहते थे। भगवान् ने सब कुछ दिया था, तीन गाँव जमींदारी के थे, वक्फ, जिनका कोई लगान नहीं देना पड़ता था। अपने कास्तकारों से स्वेच्छानुसार हर प्रकार के कर वसूल करने के उनके सुरक्षित अधिकार उन्हें सरकार से मिले हुए थे। परन्तु इस दिशा में भी चौधरी रणधीरसिंह जी प्रजापालक ही थे। केवल कारिन्दे की कुछ अनुचित बातों को कभी-कभी उन्हें नजरअन्दाज अवश्य कर देना होता था। जमींदारी के रौब-दौब पर इस प्रकार कभी-कभी आत्मा का बलिदान वह दे डालते थे और उनका विश्वास था कि ऐसी चालें काम में लाये बिना बेचारा कारिन्दा भी व्यवस्था नहीं रख सकता, प्रबन्ध नहीं चला सकता था।

चौपाल के ठीक पीछे चौधरी साहब की बैठक थी, जिसे एक छोट दीवानखाना अथवा निजी दर्बार भी कहा जा सकता था। इस बैठक क दीवारों पर चौधरी साहब के पिता, पितामह और इसी प्रकार कई पूर्वज के चित्र लगे हुए थे। जार्ज पंचम और विक्टोरिया रानी के चित्र सुनहल फ्रेम में विशेष सज-धज के साथ कमरे के बीचोंबीच सामने वाली दीवा पर लगे थे। इधर-उधर शेर और चीतों की खालें लटकी हुई थीं। बारह सींगों की खोपड़ियों की तो कुछ गिनती ही नहीं थी। एक ओर दीवा पर ढाल-तलवार टँगे थे और दूसरी ओर जालीदार, जंग-खाया तथा अनेक स्थानों से छिया हुआ जिरेबख्तर टँगा था। एक भाला और उसके पास लोहे का भारी टोप भी दीवार पर दिखलाई देता था। इनके अतिरिक्त ढाल, तलवार, बरछी, बन्दूक, खुखरी और न जाने कितने प्रकार के अस्त्र शस्त्र वहाँ पर सजा कर दीवारों से चिपका दिये गये थे, जिन्हें देखत ही आगंतुक की विचार-शक्ति विस्मय तथा आश्चर्य के साथ चक्क काटने लगती थी।

कमरे की छत पर रेशमी कपड़ा मँढ़ा हुआ था और फर्श पर सुन्द मिर्जापुरी मखमल के कालीनों का जमाव था। उस दर्बारी कमरे के ठीव बीचोंबीच चौधरी साहब का मसहरीदार पलंग बिछा हुआ था। पलंग की पट्टियों से संदल की महक फूटा करती थी। इस सौगात क उनकी छोटी चौधराइन अपने पीहर से लाई थीं। पलंग के सामने चौधरी साहब की फरशी रखी रहती थी, जिसकी चक्करदार साँप जैसी नै उनके मित्र, लखनऊ के नवाब साहब ने बनवाकर भिजवाई थी। पलंग से कुछ हट कर अन्य आने वालों के लिए बेंत के मूढ़े पड़े थे, जिन प सुर्ख मखमली गद्दियाँ रंग-बिरंगे डेमसी धागों से कढ़ी हुई विशेष सज-धज से करीने के साथ लगी रहती थीं। बैठक के सामने जो लम्बा चौ वराँडा था उसके गोल थमलों के सहारे इश्केपेचाँ और अङ्गूर की बे लिपटी रहती थीं; साथ ही उनकी जड़ों के चारों ओर सदाबहारा, बेल जूही, चमेली, गुलाब और ताड़ के गमले लगे रहते थे। इधर-उध

दो कोनों पर रात की रानी के दो झबराये हुए गुम्फेदार वृक्ष थे, जिन से संध्या होते ही मँहक फूट निकलती थी। यह दोनों वृक्ष छोटी चौधराइन की फरमाइश पर ही चौधरी साहब ने अपने बड़े बगीचे से उठवाकर मँगवाये थे। संध्या-समय चौधरी साहब मूढ़े बाहर निकलवा कर इसी बराँडे में बैठा करते थे, और यहीं पर उनके खास-खास मित्र उनसे मिलने के लिए आते थे।

लाला छगन मगन अपनी मोटी तोंद पर हाथ फेरते हुए मलमल के कुर्त्ते की आस्तीनें ऊपर चढ़ाकर सामने से आते हुए बोले, "जै राम जी की चौधरी साहब !"

चौधरी साहब—"जै राम जी की सेठ ! आओ भय्या छगन मगन ! कहो, अच्छे तो रहे शहर में। मुन्नू बेटे ने खूब खातिर की होगी।"

लाला छगन मगन—"बस क्या पूछते हो चौधरी साहब वहाँ की बात ? पृथ्वी पर यदि कोई स्वर्ग है तो वह शहर में ही है। हम लोगों का तो सारा जीवन यों ही छटंकी की अधपई और अधपई की छटंकी करते हुए व्यतीत हो गया। परन्तु तुम्हारे मुन्नू बेटे ने तो बस कमाल ही कर दिया है। क्या व्यापार फैलाया है कि शहर के बड़े-बड़े दिमागदार उस का लोहा मान गये।"

चौधरी साहब एक लम्बी श्वास खींच कर बोले—"ठीक है भय्या ! परन्तु यह सब भाग्य का खेल है। मैं तुम्हीं से पूछता हूँ कि क्या तुम्हारा विजय बेटा कुछ कम दिमाग रखता था ? कब-कब वह परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण नहीं हुआ ? प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रथम आना कोई मजाक नहीं था !"

लाला छगन मगन मुस्कराते हुए बोले—"जाने भी दीजिये इन बातों को अब चौधरी साहब ! भाग्य को मैं अवश्य मानता हूँ परन्तु परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण होना कोई विशेष बात नहीं। रट-रट कर तोता पंडित नहीं बन सकता, और यदि बन भी गया तो क्या उसमें पंडितों के गुण आ सकते हैं ? मुन्नू बेटा तो बचपन से ही होनहार था। पूत के पाँव

पालने में ही दिखलाई दे जाते हैं। यह बड़ों का कहना है।"

चौधरी रणधीरसिंह जी को क्रोध आ गया। उनके नेत्रों से रक्त बरसने लगा। उनके परिवार के टुकड़ों पर पला हुआ यह लाला छगन मगन, इसके तमाम पुर्खा और ...... इसकी यह सामर्थ्य कि यह भय्या विजय कुमार को तोता कह कर पुकारने का साहस कर सके। जी में एक बार आया कि इस नीच को अभी एक बोरे के समान उठा कर चौपाल के सामने वाले रास्ते में पटख दें और कह दें कि यदि भविष्य में उन्होंने इस चौपाल पर तो आना दूर की बात है, चौपाल के सामने से भी निकलते देख लिया तो हड्डियों का चूरा करा दिया जायगा। परन्तु न जाने क्यों आज वह रक्त का घूंट पीकर ही रह गये। वह वहां पर बैठे न रह सके। तुरन्त उठकर अन्दर बैठक में गये और जनानखाने के अन्दर जाने वाले छोटे द्वार से सीधे हवेली में चले गये।

चौधरी रणधीरसिंह के नेत्रों की पुतलियों में पुराना एक लम्बा-चौड़ा इतिहास साकार हो उठा। सन् १८५७ के राज्य-विद्रोह में दो अंग्रेजों को प्राण-दान देने के उपलक्ष में जब यह तीन गाँव चौधरी साहब के पूर्वजों को पुरस्कार-स्वरूप प्राप्त हुए थे, और उन्होंने इन पर पुलिस और फौज के साथ आकर अधिकार किया था, तो उस समय इन्हीं लाला छगन मगन के पूर्वजों ने उनके पूर्वजों के चरण छूकर यह शपथ ली थी कि वह और उनके बाल-बच्चे सर्वदा चौधरी साहब के दास तुल्य उनकी सेवा में रहकर अपना जीवन व्यतीत करेंगे। उन्हीं लाला लोगों की सन्तान यह छगन मगन आज उनके विजय भय्या की समानता तोते से करने चला है। नीच कहीं का, पाजी! अभी चाहें तो गाँव से उजाड़ कर रख दें। किसी को संकेत भर कर दें तो घर में एक समय के लिए भोजन भी न रहे। परन्तु चौधरी साहब बड़े घराने के बच्चे थे। किसी को उजाड़ना उन्होंने नहीं सीखा। फिर जिन्हें उनके पूर्वजों से आज तक पालते-पोसते चले आ रहे हैं उनपर तो हाथ ही नहीं डाला जा सकता। यह लोग चाहे कितनी भी मूर्खता क्यों न करें, परन्तु फिर भी व

इनकी दया के ही पात्र हैं। छोटी बुद्धि के व्यक्ति थोड़ी सी सम्पदा प्राप्त करने पर ही सीमा से बाहर होकर चलने लगते हैं।

यह विचार मन में आते ही चौधरी साहब फिर अपनी बैठक के पीछे के द्वार से बरांडे में पहुँच गये। लाला छगन मगन उसी प्रकार मस्ती में एक मूढ़े पर आलती-पालथी लगाये विराजमान थे। उनके लिए मानो कुछ हुआ ही नहीं। उनके बैठे-बैठे चौधरी साहब का दो चार बार अन्दर चला जाना और फिर बाहर बरांडे में चले आना मानो साधारण-सी बात थी। लाला छगन मगन चौधरी साहब की रसिक-प्रिय मनोवृत्तियों से पूर्ण परिचित थे। फिर चालीस वर्ष की आयु में किया गया विवाह, वह मना भी किस प्रकार कर सकते थे अन्दर जाने के लिए। नई नवेली से बातें चौधरी साहब करते थे और आनन्द लाभ लाला छगन मगन को होता था, यहीं मूढ़े पर बैठे-बैठे। अपनी प्रखर कल्पना-शक्ति के आधार पर उन्हें अनुमान लगाने में देर नहीं लगती थी कि अब किस प्रकार बल खा-खाकर छोटी चौधराइन नेत्रों की भाषा में चौधरी साहब से बातें कर रही होंगी। फिर किस प्रकार चौधरी साहब उन पर रीझ-रीझ कर अपने मित्र लाला छगन मगन के लिए नाश्ता और गिलौरियाँ बाहर बरांडे में भिजवाने का अनुरोध कर रहे होंगे। छोटी चौधराइन के हाथ का लगाया हुआ पान का टुकड़ा लाला छगन मगन के मोटे फूले गालों में अमृत घोल देता था।

लाला छगन मगन—"हमारे भाग्य में एक गिलौरी भी नहीं है चौधरी साहब, यह हम पहिले ही जानते थे। क्या कह नहीं दिया था आपसे हमने विवाह के ही समय? परन्तु नई नवेलियों को इस प्रकार पिटारे में बन्द करके रखना भी ठीक नहीं रहता। मैं कहता हूँ कि एक बार शहर की सैर कर आओ। तुम देखोगे कि तुम्हारा मुन्नू लाला कितनी खातिरें करता है।" चौधरी साहब के मुख पर मुस्कान दौड़ गई। विचार और कल्पना के पटल पर छोटी चौधराइन के लावण्य की मधुर थिरकन उन्हें दिखलाई दी और उन्होंने उन मदभरे

नेत्रों में झाँकते हुए कहा—"क्या कहते हो सेठ! तुम्हारे लिए एक गिलौरी तो क्या, प्राण भी हाज़िर हैं। तुम जानते नहीं हो क्या चौधरी यारों का यार है? उसका अपना तो उसमें कुछ है ही नहीं।"

तभी लाला छगन मगन के लिए एक चाँदी की तश्तरी में कुछ नाश्ता और दूसरी में चाँदी के वर्क लगे हुए पानों के चार बीड़े आ गये। "देखा तुमने! यह सब क्या मैं अन्दर कहने गया था? छोटी चौधराइन की बुद्धिमत्ता की मैं क्या प्रशंसा करूँ सेठ! उसने जीवन का यह अन्तिम काल स्वर्ग के सुखों से पाट दिया है।"

लाला छगन मगन आनन्द-विभोर हो उठे। किसी स्त्री द्वारा झूठे को भी यदि यह पता चल जाता था, कि उनका सम्मान किया जा रहा है, तो उनकी आत्मा प्रफुल्लित हो उठती थी, उनका मन झुल-झुलाने लगता था, बदन में रह-रह कर सिहरन आने लगती थी और नेत्र आपसे आप मुँद-मुँद कर खुलने लगते थे। नारी के लिए आपके हृदय में एक बहुत ही कोमलतम स्थान था, जिस पर प्रत्येक रूप और लावण्य की देवी को साम्यवाद की विचारधारा के आधार पर सम्मानित किया जाता था। सुन्दर नारी का संकेत पाते ही उनके हृदय का कोना-कोना महँक उठता था। उनके जीवन की व्यापारिक दृढ़ता को आज तक केवल नारी ने ही अस्थिर कर पाया था, स्वार्थपरता और छल-कपट का उद्घाटन नारी की ही वक्र दृष्टि द्वारा हुआ था और नारी की सुकुमार भाव-भंगिमा पर ही वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत रहते थे।

लाला छगन मगन को नारी ने ही जीवन में सबसे अधिक धोखा दिया था परन्तु पैसे को वह प्रभुत्व प्राप्त था कि नारी का अभाव और धोखा कभी भी उनपर विजय प्राप्त नहीं कर सके। नारी को देखकर पैसे को दाँत से पकड़नेवाली उनकी प्रवृत्ति का न जाने कहाँ लोप हो जाता था। पान का बीड़ा गाल में दबाते हुए लाला छगन मगन बोले, "चौधरी साहब! खूब लगाया है पान! छालियाँ तो लाजवाब मालूम

देती हैं।" इतना कह कर आनंद से झूम उठे।

चौधरी साहब—"छालियाँ! अरे भाई धमना पनवाड़ी के हाथ की कटी हुई हैं; क्या खूब छालियाँ काटता है धमना भी। मैंने देखा है मैनपुरी में कि उसकी दूकान पर उस समय तक भीड़ लगी रहती है जब तक वह दूकान का ताला बन्द करके चल नहीं देता।"

इसके पश्चात् बातों की दिशा ही बदल गई। सेठ जी के लड़के मुन्नू लाला ने अधिक पढ़ना लिखना व्यर्थ समझकर गाजियाबाद में कोटोजम का मिल लगा लिया था। गत महायुद्ध के समय व्यापार को विशेष बढ़ावा मिला। कई लिमिटेड कम्पनियाँ बनाईं, उनके शेयर बेचे और फिर उन्हें समाप्त कर दिया। कितने ही भागीदार बनाये और फिर उन्हें हरी झंडी दिखला दी। मुन्नू लाला अब मलमल का कुर्त्ता न पहिन कर सूट पहिनते थे, गाँव की पुरानी हवेली में न रहकर शहर के सुन्दर बँगले में रहते थे, कार थीं दो तीन उनके पास और अनेकों नौकर-चाकर थे। अब वह गाँव की ओर को मुँह करना भी कभी पसंद नहीं करते थे। खुली हुई धोती की फेंट को सँवारते हुए चौपाल के नीचे से नंगे ही पैरों अपनी भैंस को ढोरी में पीटने के लिए जाने वाली स्मृतियाँ अब मुन्नू के मस्तिष्क का स्वप्न बन गई थीं। उनके चिन्ह भी अब कुछ अवशेष नहीं रहे थे। सुबह-शाम गाँव के स्कूल से लौटने पर अपनी नमक-मिर्च की दूकान पर बैठ कर डंडी मार-मार कर तौलना और गाँव की लड़कियों से झगड़ना भी अब उन्हें याद नहीं था। चरागाहों में साथ गुल्ली-डंडा खेलने वाले रामू, भिक्खी और दीना जब उनसे मिलने शहर गये तो चपरासियों ने उन्हें लाख मिन्नत-समाजत करने पर भी मुन्नू लाला के पास तक नहीं फटकने दिया। अन्दर जाकर सूचना भी दी तो सेठ जी के व्यस्त मस्तिष्क पर उनकी स्मृतियाँ उभर कर न आ सकीं। रामू, भिक्खी और दीना को निराश होकर गाँव लौट आना पड़ा। मुन्नू लाला के पास समय भी कहाँ था इन व्यर्थ के आदमियों के साथ दिमाग-पच्ची करने का। उनका एक-एक

क्षण मूल्यवान् था। उनके समय का उपयोग वही व्यक्ति कर सकता था जो उसका मूल्य चुकता कर सके। समय नष्ट करने का अवकाश उन्हें कहाँ था। एक से एक महान् योजना उनके पास नित्य आती थी। नवीनतम योजनाओं का निरीक्षण सेठजी बहुत ही ध्यानपूर्वक करते थे। नई योजनाओं में नए-नए पंछी फँस कर आते थे और एक से एक नए व्यापार का उद्‌घाटन होता था। घनिष्ट मित्रता से कार्य प्रारम्भ होते थे और दोनों पक्ष और विपक्ष के हृदयों को काला बनाकर समाप्त हो जाते थे। परन्तु मुन्नू लाला कारबारों में नित्य घाटे देने के पश्चात् भी बढ़ रहे थे, फैल रहे थे और उनकी जड़ें उस भूमि में घुसती चली जा रही थीं जिसमें वह उन्हें स्थायी बनाकर संसार की सब शक्तियों का केन्द्र अपने को मानने का स्वप्न देखना चाहते थे। सेठ मुन्नू लाला का स्वप्न आज हर हिटलर से भी ऊँचा था, परन्तु उसका आधार ऐटम-बम न होकर था उनका व्यापारिक मस्तिष्क और उसकी चालें।

मुन्नू लाला अब कोरे आटे की दूकान पर बैठ कर गुड़ का नमक और हल्दी का ज्वार अथवा बाजरा करने वाले बनिये बक्काल नहीं रह गये थे और न ही उनपर चौधरी रणधीरसिंह जी की चौधराहट का ही कोई प्रभाव था। यह ठीक है कि किसी समय में उनके पुरखों ने कभी ऐसी कसम खाई होगी कि जिसमें वह जन्म-जन्मान्तर तक के लिए चौधरी साहब के दास बनने वाली दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर कर बैठे हों, परन्तु मुन्नू लाला का जन्म क्राँति के युग में हुआ था। वह इस प्रकार की रूढ़िवादी विचारधारा में अपने को बाँधकर नहीं चल सकते थे। उनके लिए वह पुरानी दस्तावेज एक रद्दी कागज का टुकड़ा मात्र थी, जिसकी मयाद निकल चुकी, और अब मुन्नू लाला उसपर विचार करने के लिए कानूनन बाध्य नहीं।

मुन्नू लाला ने एक कर्मण्य व्यक्ति के नाते इस संसार के पथ पर पग बढ़ाया था। व्यक्तिगत उन्नति के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का प्रयोग करना वह अपना धर्म समझते थे, कर्त्तव्य मानते थे। भगवान्

ने प्रत्येक व्यक्ति को मस्तिष्क दिया है और उसमें विचार दिया है। इनका प्रयोग यदि कोई व्यक्ति अपनी उन्नति के लिए करता हुआ संकोच करता है तो वह व्यक्ति मुन्नू लाला की दृष्टि में मूर्ख है, अकर्मण्य है, निर्बल है और मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं। वह दया का पात्र है और मुन्नू लाला अपने को किसी की दया का पात्र घोषित करने के लिए एक से लाख तक उद्यत नहीं थे। वह आज दूसरों पर दया कर सकते थे और यहाँ तक कि कभी-कभी उनका हृदय चौधरी रणधीर-सिंह जी के प्रति भी द्रवित हो उठता था।

आज भारत स्वतन्त्र हो जाने पर मुन्नू लाला गत महायुद्ध में दिये गये अपनी सरकार के प्रति सहयोग को अपनी चातुरी बतलाकर प्रसन्न हो उठते थे। मुन्नू लाला ने, चाहे धोखा देकर ही सही, परन्तु भारत की पूँजी को भारत में ही सुरक्षित रखने का भरसक प्रयत्न किया था और किसी सीमा तक उनका यह कथन सत्य भी था। महायुद्ध समाप्त होने पर जब ब्रिटिश सरकार के पैर डगमगाये तो गत महायुद्ध के समय की उपजस्वरूप भारत के भाग्य-विधाता बनना चाहने वाले पूंजीपतियों की भारत में कमी नहीं थी। भारत की भूमि पर पूंजीपति-समाज का इतना महान् विस्तार इस युद्ध-काल में हुआ कि आँटी में एक लाख रुपया रखने वाला भी अपने को पूंजीपति कहकर गर्व से एड़ियाँ उचका-उचका कर चलने लगा। उसका विश्वास था कि यह नई सरकार जब अपने हाथों में राजदंड सँभालेगी तो इसे संसार में मुख दिखलाने योग्य बनने के लिए उन पूंजीपतियों का मुख ताकना पड़ेगा। मुन्नू लाला को इस बात का गर्व था कि चाहे वह एक ओर सरकार के ठेके लेकर काँग्रेस की नीति का विरोध ही क्यों न कर रहे हों परन्तु उन्होंने दूसरी ओर अनेकों रूप से काँग्रेस-कार्यकर्त्ताओं की सहायता की थी। उनके परिवारों को कई वर्ष तक पाला-पोसा था। उनके उपकारों और ऋणों से वर्त्तमान प्रजातन्त्रीय दल के प्रमुख व्यक्ति कम-से-कम इस जन्म में उऋण नहीं हो सकते थे। उन्हें विश्वास था

कि हम जब अपना दयालु वेष धारण करके मलमल का कुर्त्ता पहिने हुए उनके सामने आयँगे तो वह कुर्सी छोड़कर खड़े हो जायँगे और बस शासन की बागडोरें सेठ जी के हाथों में आ जायँगी। सेठ मुन्नू लाला अधपई और छटंकी से शासन की बागडोरें अपने हाथों में सँभालने का स्वप्न देख रहे थे। उनमें पूँजी का बल था और उसी बल के आधार पर महत्वाकांक्षाओं का उज्जवलतम भविष्य उनकी आँखों के सामने ईस्ट इण्डिया कम्पनी का जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत करता था। जब विदेश के व्यापारी भारत पर छा जाने में सफल हो सके और उन्होंने सफलतापूर्वक राज्य भी किया, तब क्या मुन्नू लाला भारत के ही व्यापारी होकर भारत पर नहीं छा सकते ? आखिर क्या नहीं कर सकते वह ? उनके मस्तिष्क का कोई कोना विचार से खाली नहीं था। शिक्षा कुछ कम अवश्य थी, वह कोई बात नहीं। अकबर ने भी भारत पर राज्य किया था, परन्तु भारत के मुसलमान-इतिहास-काल में वही अमर मूर्ति है कि जिसने चाणक्य के पश्चात् प्रथम बार भारत को संगठित होने का संदेश दिया। भारत की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करके एक व्यवस्थित शासन बनाने का प्रयत्न किया। मुन्नू लाला कभी-कभी जब विचारों में तन्मय होते थे और इतिहास पर दृष्टि डालते थे तो उन्हें मानव से मूर्ख कोई जानवर भी प्रतीत नहीं होता था। मानव ने आज तक मानव को नहीं पहिचाना, बस यही भेद तो संसार के विविध संग्रामों का मूल मन्त्र है। परन्तु मुन्नू लाला ने इस महान् तत्व को भी उस स्थान तक अवश्य स्वीकार कर लिया था कि जहाँ तक वह उनके व्यक्तिगत मार्ग में कुछ घातक सिद्ध नहीं होता था। मुन्नू लाला आधुनिकतम प्रगतिवाद के वह स्वार्थप्रिय व्यक्ति थे कि जो अपने को आँच न आने पर दूसरों की हर प्रकार की उन्नति में सहायता देने के लिए उद्यत थे। उनके मन में भी यश की भूख थी और उसी की तृप्ति के लिए वह भारत की हर राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक पार्टी के तेज घोड़ों पर पैर रखने और उनका

मूल्यांकन करने में तत्पर रहते थे। समय और परिस्थिति की परख में मुन्नू लाला बहुत दक्ष थे।

मुन्नू लाला व्यक्तिवादी थे और संसार की समस्त शक्तियों का केन्द्र वह व्यक्ति को ही मानते थे। समाजवाद की बातें उन्हें मूर्खता से भरी हुई प्रतीत होती थीं और जब किसी वक्ता को वह इस विषय पर व्याख्यान देते सुनते भी थे तो मन ही मन उसे कई बार मूर्ख कहकर यह अवश्य कह डालते थे, 'मूर्ख! जब तक मुन्नू लाला जैसे विशाल भूधर तुम्हारे मार्ग में खड़े हैं तब तक तो तुम्हें अपनी यात्रा का दूसरा छोर तो क्या चार कदम आगे तक की वस्तु भी दिखलाई नहीं देगी। हमारे जैसी चट्टानों से टकराने के लिए तुम्हारी यह कोरी जबान की लपालपी काम नहीं दे सकती।'

मुन्नू लाला एक साधारण सड़क पर पड़े पत्थर के टुकड़े से बढ़कर अब एक विशाल पर्वत बन चुके थे और बहुत ही गम्भीरतापूर्वक देश की प्रगति को देख रहे थे कि आखिर यह जाता किस ओर है। ऊँट किस करवट बैठता है इसका उन्हें पैनी दृष्टि से निरीक्षण करना था। शासन की बागडोरें जीवन के कठोर सत्य से अनभिज्ञ जनता की भावनाओं से खेलने वाले काँग्रेस-दल के हाथों में आते ही इन पूंजी के ठेकेदारों ने अपने को चारों ओर से समेट लिया। अपनी प्रगतियाँ धीमी कर दीं और सहयोग देने के बहाने ऊपर चढ़ बैठने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

चलते समय लाला छगन मगन ने केवल इतना ही कहा—"चौधरी साहब! आपको क्रोध आ गया, परन्तु बात मेरी ही सच थी। मुन्नू लाला को अब आप वह ढीली धोती वाला लाला छगन मगन का बेटा न समझें। बड़े-बड़े एम. ए., बी. ए. वालों को मैंने उसके बँगले पर आते और नाक रगड़ते देखा है। वह चाहे पढ़ा-लिखा अधिक न सही, परन्तु व्यापार की दुनियाँ में उसने अपने व्यक्तित्व का झण्डा गाड़ दिया है। जो ब्रांड भी वह बनाता है हिन्दुस्तान भर

के बाजारों में छाता हुआ चला जाता है; एक धूम-सी मच जाती है व्यापारिक केन्द्रों में और उसके सामने बड़े-बड़े शहरों के सेठ एजेन्सियों के लिए गिड़गिड़ाते हैं।"

चौधरी रणधीरसिंह—"अरे गिड़गिड़ाते होंगे लाला छगन मगन! लेकिन हम बड़े घराने के आदमी हैं। हमने किसी के यहाँ जाकर गिड़-गिड़ाना नहीं सीखा। हम धन की कोई कीमत नहीं समझते। रुपया हाथ का मैल है; परन्तु हमारी मर्यादा, जिसे हमने अनेकों बलिदान देकर भी सुरक्षित रखा है, उसे हम हाथ से नहीं जाने देंगे। हम व्यापार को छोटी चीज समझते हैं। व्यापारी हमारा सेवक है और सेवक ही रहेगा।"

लाला छगन मगन का साहस नहीं था कि वह इससे अधिक और कुछ कह सकें। उन्हें अब चुप हो जाना पड़ा। सत्या विजय कुमार के जेल चले जाने का दुःख चौधरी रणधीरसिंह को इतना अधिक हुआ था कि उसी समय से उनके हृदय और मस्तिष्क ने ठीक-ठीक कार्य करना बन्द कर दिया था। चौधरी साहब से लाला छगन मगन को पूरी-पूरी सहानुभूति थी और वह एक सच्चे मित्र के नाते चौधरी साहब को किसी बड़े शहर की कोई एजेन्सी दिलाने के फिराक में थे; परन्तु चौधरी साहब के सम्मुख वह यह प्रस्ताव किसका सीना लेकर रखते। उनमें साहस नहीं था, बल नहीं था। जो रुपया वह चौधरी साहब को यों ही कभी-कभी दे जाते थे उसका पूरा-पूरा हिसाब रखने में चौधरी साहब कभी नहीं चूकते थे। सेठ का रुपया उनके परिवार ने समय पड़ने पर इस्तेमाल कई बार किया था परन्तु कभी आज तक ऐसा नहीं हुआ कि वह रुपया सूद सहित उन्हें न लौटा दिया गया हो; और साथ ही सेठ जी के परिवार की इस सेवा के उपलक्ष में उन्हें जमींदार साहब के परिवार द्वारा पुरस्कार भी दिया जाता था। इसी तरह दोनों परिवारों की पारस्परिक सद्भावना सन् १८५७ से आज तक चली आ रही थी और एक दूसरे के दुःख-सुख में दोनों

सहयोगी बने चले आ रहे थे।

दो मित्रों का जीवन चल रहा था अथवा यों कहिये कि जीवन की रूप रेखाएँ घिसट रही थीं। एक गाँव का सेठ था और दूसरा गाँव का चौधरी, दोनों ही व्यक्ति अपने जीवन की बदलती हुई राहों पर कल और आज की परिभाषा में दृष्टि डालते थे तो लाला छगन मगन का मन आनन्द की मौजों में नाच उठता था और मन ही मन कहते थे अपने से, 'हम आगे बढ़े, पक्की दूकान बनाई, पक्का मकान बनाया और हमसे हमारा पुत्र कितना आगे बढ़ गया। हम तो केवल अन्दर ही अन्दर की मार करना जानते थे और हमारे पुत्र ने अन्दर और बाहर दोनों ओर से मार करनी सीख ली। मुन्नू कर्मठ्य निकला उसका संसार में यश होगा, परन्तु चौधरी साहब की तबियत बहुत क्षुब्ध रहती थी। उन्हें सबसे बड़ा दुःख इसी बात का था कि उनका पुत्र उनके पूर्वजों के मार्ग पर न चलकर एकदम दूसरी ही धारा में बह निकला। विद्वान् होकर भी अपने पैरों में स्वयं कुल्हाड़ी मार रहा है। जिन महाशयों ने जीवन भर हमारी जूतियाँ झाड़ीं, वह सेठ बने बैठे हैं, और हमें अपना कर्जदार समझ कर शायद अब वह हमें छोटा भी समझने लगे हों। यह बात उनकी आत्मा के लिए असहनीय थी और इसी दुःख से उनका स्वास्थ्य भी बराबर गिरता जा रहा था। लाला छगन मगन फूल-फूल कर कुप्पा हो गये थे और चौधरी साहब के गाल पिचक चले थे।

लाला छगन मगन आज ही शहर से लौटकर आये थे और ठीक से सामान भी ताँगे से नहीं उतर पाया था कि इधर चौधरी साहब की हाजिरी देने चले आये। दो-चार दिन शहर में रहे अवश्य और वहाँ के सब ऐश और ठाट-बाट का भी एक अजीब ही अन्दाज था, परन्तु ठाकुर साहब के पास दो क्षण बैठने का जो मजा था वह उसमें नहीं था। मुन्नू लाला के लाख रोकने पर भी लाला छगन मगन गाँव चले आये। शहर में रहना उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

चौपाल की सफील तक चौधरी साहब लाला छगन मगन को छोड़ने के लिए आयें। दोनों की मित्रता में कोई कमी नहीं थी। आस पास का देहात दोनों को दो शरीर और एक आत्मा कहकर मानता था। दोनों की शक्ति के सम्मुख किसी भी देहात के अन्य व्यक्ति में सिर उठाने का साहस नहीं था। दोनों का एक-छत्र राज्य था। बर्तानिया सरकार के ही समय में कुछ नियमों द्वारा सेठ जी के लेन-देन को कुछ धक्का अवश्य पहुँचाया गया था और उसके फलस्वरूप गाँव के कुछ गुण्डों ने सिर भी अवश्य उभारा था परन्तु उन्हें दब जाना पड़ा था। सेठ जी को वास्तव में उसी समय चौधरी रणधीरसिंह जी की मित्रता का फल मिला। चौधरी रणधीरसिंह की धाक ने कर्जदारों की हड्डियों से भी सेठ जी का रुपया व्याज सहित उघवाया और इस प्रकार उन्होंने अपनी प्रजा की ईमानदारी और अपनी शक्ति का ज्वलंत उदाहरण लाला छगन मगन के सामने प्रस्तुत किया। इस देहात की शक्ति के यह दो प्रधान केन्द्र थे, बहुत गहरे, बहुत गम्भीर परंतु आज की दुनियाँ में कुछ-कुछ अव्यवस्थिति, सशंकित, उद्भ्रांत और कभी-कभी कुछ निराशापूर्ण भी। विचारधारा अस्थिर थी, जीवन चल रहा था, कभी कुछ मंथर और कभी कुछ तीव्र गति के साथ।

[२]

'पिताजी कहते हैं कि उनके पूर्वजों को जो तीन गाँव १८५७ में दो अंग्रेजों के प्राण बचाने के उपलक्ष में सरकार ने दिये वह उनकी मानवता का प्रमाण है। उनका कहना है कि यह तीन ग्राम उन्हें अंग्रेजी सरकार ने नहीं दिये वरन् उनकी मानव के प्रति दयालुता से प्रसन्न होकर परम पिता परमात्मा ने दिये थे। अपने परिवार के उसी पुण्य को हम लोग आज तक भोगते हुए चले आ रहे हैं। तुम भी बेटा ! अपने परिवार की मर्यादा को सुरक्षित रखना। भगवान्-प्रदत्त इस सुख तथा सम्पत्ति की सुरक्षा करना। अपने आधीन रहने वालों के साथ दया का बर्त्ताव करना। हर प्रकार की हानि को सहन करके भी परिवार के मान की सुरक्षा करना।' पिताजी का यह उपदेश आज विजयः कुमार के कानों में बज उठा। इस परिवार की एक लम्बी-चौड़ी कहानी थी, जिसमें देश-द्रोह और देश-भक्ति के चित्र अङ्कित थे। जिसमें दया और निर्दयता का सम्मिश्रण इस परिवार ने ऐसा स्थापित किया था कि देख कर दर्शक चमत्कृत हो उठें, जिसमें मान और मर्यादा की वेदी पर वीर न्यौछावर हुए थे, जिसमें भाई को विदेशी बनाकर विदेशी को भाई बनाने का स्वप्न देखा गया था, आज यकायक उसके नेत्रों की पुतलियों में झूल उठा।

विजय कुमार जी पलंग से कुछ छटपटा कर खड़े हो गये। उन्हें यह सब कुछ ऐसा गोलमाल-सा प्रतीत हुआ कि मानो उनकी निद्रा में कोई उन्हें लूट कर लिये जा रहा है। उनका ध्यान अपने घर की ओर गया और फिर देश की ओर। वीर युवक के हृदय की जीवट ने अन्दर से पुकार कर निर्भीक स्वर में कहा, 'नहीं मैं अपने निर्भीकता के गुण का परित्याग नहीं कर सकता। मैं जीवन में निर्भीक होकर ही

चलूँगा। अपने इसी सिद्धान्त के बल पर जीवन में सफल हो जाना मेरा लक्ष्य होगा। देखता हूँ हमारे पूर्वजों के भगवान् कहाँ तक मेरे लक्ष्य की पूर्ति में मेरे सहायक होते हैं।'

विजय कुमार ने जेल में ही निश्चय कर लिया था कि जमींदारी-प्रथा को एक-न-एक दिन जाना है, वह आज जाय, कल जाय या कल के पश्चात्। भारत में सूदखोरी और जमींदारी को नहीं पनपने दिया जा सकता। यह दोनों ही वर्ग राष्ट्र के हितों पर जोंक के समान चिपटे हुए हैं। विजय कुमार निश्चय कर चुके थे कि वह इस बार जेल से निकलते ही ऐसे आन्दोलन की रूप रेखा तय्यार करेंगे कि जिसके अन्तर्गत वह भारत की जनता को इन स्वार्थी वर्गों के विरुद्ध संगठित कर सकें।

समय ने पलटा खाया, विजय कुमार जी उत्तर प्रदेश सरकार के मंत्रि-मंडल में निर्वाचित होकर जन-सेवा के मैदान में उतर पड़े। घर से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके पिता रणधीरसिंह जी ने एक दिन अपने इकलौते पुत्र को घर से निकाल दिया था—क्यों? क्योंकि उन्होंने पिता की अपना विवाह कर लेने की आज्ञा का उल्लंघन किया था। परन्तु आज मंत्री-पद पर इकलौते पुत्र का नाम पत्रों में पढ़कर चौधरी रणधीरसिंह जी का कलेजा गद् गद् हो उठा। पुत्र की ममता ने जोर पकड़ा और पिता का बूढ़ा तथा आश्रय चाहने वाला हृदय ममता-भाव से उधर को ढुलक पड़ा। रणधीरसिंह चल दिये पुत्र से मिलने को। पुत्र की वीरता के कारनामे उन्होंने सुने थे और कई बार वह सुन-सुन कर दंग रह गये थे। उसकी निर्भीकता की कहानी भारतीय पत्रों में अनेकों प्रकार से गाई गई थी। उन पत्रों का एक पूरा पुलन्दा चौधरी रणधीरसिंह जी के पास था। अपने पुत्र के विषय में समय-समय पर पत्रों में छपने वाली प्रत्येक सूचना का पर्चा उन्होंने अपने जीवन की निधि मानकर सँजोया था।

रणधीरसिंह जी ने अपने कोचवान को बुलाकर प्रातःकाल आठ बजे स्टेशन जाने के लिए गाड़ी तैयार करने की आज्ञा दी। प्रातःकाल

हुआ और चौधरी साहब का बिस्तरा तांगे पर लद गया। किसी को कुछ मालूम नहीं था कि चौधरी साहब कहाँ जा रहे थे। चलने से एक क्षण पूर्व छोटी और बड़ी चौधराइन बाहर दीवानखाने में आ गईं। छोटी चौधराइन ने पान की गिलौरी आगे बढ़ाते हुए मुस्कराकर कहा, "ऐसी गुप्त यात्रा तो पहले कभी नहीं की थी। यदि हमें न बतलाना चाहें तो बड़ी बहिन को ही बतला दें कि कहाँ जा रहे हैं। आपके न रहने पर मन में चिन्ता बनी रहेगी।"

बड़ी चौधराइन—"यह ठीक ही तो कह रही हैं।"

चौधरी साहब कुछ नहीं बोले। वह अपनी धुन में मस्त थे, जाने की संलग्नता में चलते समय शेरवानी पहन कर हाथी दाँत की मूठ वाली छड़ी लेते हुए बोले, "बहुत शीघ्र लौटूँगा। चिंता करने की कोई बात नहीं। मेरा मोती खो गया है, उसी को खोजने जा रहा हूँ इस समय।"

बात कुछ समझ में न आई और चौधरी साहब पान की डिबिया तथा इलायची-छालियों का बटुआ छोटी चौधराइन के हाथ से लेकर बाहर चौपाल पर आ गये। चबूतरे से उतर कर चौधरी साहब ज्यों ही ताँगे पर सवार हुए त्यों ही लाला छगन मगन सामने आकर आश्चर्य-चकित होते हुए बोले, "मैंने कहा यह सवारी किधर को? चुपके ही चुपके? कुछ कहा न सुना और चल दिये। कहाँ जा रहे हैं, कब तक लौटेंगे; पूरा ब्यौरा दिये बिना नहीं जाने दूँगा।"

चौधरी साहब—"इस समय देर हो रही है लाला छगन मगन! परन्तु बहुत शीघ्र लौटूँगा। और तुमने सुना है कुछ भय्या विजय मंत्री बना है हमारी सरकार का।" हृदय के उभरते हुए उद्गारों को चौधरीसाहब न रोक सके।

"मंत्री!" आश्चर्य के साथ लाला छगन मगन के मुख से निकला।

ताँगा चल पड़ा और चौधरी साहब ने मुस्कराकर गर्व के साथ सीना उभार दिया। बहुत दूर तक एक टक लाला छगन मगन चौधरी

साहब का ताँगा जाता हुआ देखते रहे। उनके हृदय में प्रसन्नता थी परन्तु हल्की-हल्की कसक भी, डाह भी। उनका मन कह उठा, 'रस्सी जल गई परन्तु बल नहीं गये। अकड़ फिर भी शेष रही।' फिर साथ ही उनकी बनिया-वृत्ति ने प्रस्फुटित होकर सभी बातों को दबाते हुए कहा—'ठीक ही तो हुआ। विजय भी अपना ही बच्चा है। मंत्री-पद पर नियुक्त हुआ है। उसके सहयोग से मुन्नू बेटे का व्यापार भी चमक उठेगा। जब कमाई ही होगी तो बेचारे चौधरी साहब को भी एक बार फिर लहलहाता हुआ जीवन देखने को मिल जायगा। जीवन की नीरसता समाप्त हो जायगी।'

इन्हीं बातों का गुनताला लगाते हुए लाला छगन मगन चौपाल की सफील पर बैठ गए। वरांडे की चिक के अन्दर से दोनों चौधराइनें यह दृश्य देख रही थीं। बड़ी चौधराइन लाला छगन मगन से चौधरी साहब के सामने भी बोल लेती थीं। इसी लिए उन्होंने चिक के अन्दर से ही पुकारते हुए कहा, "सेठ जी!"

"जी चौधराइन जी!" एक दम विद्युत्-गति से खड़े होते हुए तनिक अपनी तोंद को सँभाल कर चिकन के कुरते की सिलवटें खोलकर लाला छगन मगन बोले। गर्दन नीची किये, चिक से दो गज पीछे हटकर खड़े हो गये।

"चौधरी साहब कहाँ गये हैं, आपको पता है कुछ इसका?"

"हाँ हाँ, क्यों नही चौधराइन जी! क्या आपको बतलाकर नहीं गये?"

"हमें अभी कुछ नहीं बतलाया उन्होंने? तुम तो जानते ही हो उनकी आदतों को। अब बुढ़ापे में क्या वह आदतें बदलने जा रही हैं?"

"सच! अरे! गजब कर दिया चौधरी साहब ने। अब देखा न आपने वही बात हुई जो मैं कहा करता था। भय्या विजय को क्रोध में आकर घर से निकाल दिया। कहीं इकलौते बेटे को इस तरह भी घर से निकाला जाता है। अब मेरा पुत्र ही यदि मेरा कोई कहना न माने तो क्या मैं उसे घर से निकाल दूं?" इतना कह कर सेठ जी

ने ऐसा दुःखपूर्ण मुँह बना लिया कि मानो वह उस समय अपार दुःख के सागर में गोते लगा रहे थे।

बड़ी चौधराइन के हृदय की दबी हुई ज्वाला पर मानो लाला छगन मगन ने धोंकनी लगाकर जोर की फूँक मार दी। हृदय धक-धक-धक करके जलने लगा और उनके नेत्रों से टपाटप अश्रुओं की झड़ी लग गई। छोटी चौधराइन के भी नेत्र पसीज गये।

"अब कहाँ गये हैं जानती हो चौधराइन! कह कर मुझ से भी नहीं गये परन्तु बतलाये देता हूँ कि गये हैं विजय भय्या को ही मनाने के लिए।"

"सच!"

"मैं तो यही समझता हूँ चौधराइन जी! और आगे भगवान् जाने।"

इतना कहकर लालाजी धीरे-धीरे चौपाल की सीढ़ियों से नीचे उतर गये! दोनों चौधरानियाँ कुछ क्षण चिक से सटी खड़ी रहकर फिर अन्दर चली गईं। दोनों के हृदय में आनन्द की एक लहर दौड़ रही थी। एक-दूसरी के मुख को देख-देखकर प्रसन्न होती थीं परन्तु जबान पर कुछ कहने के लिए एक शब्द भी न आता था। एक ने दूसरी के मुखमण्डल पर अपने हृदय की मौन-भाषा को नेत्रों में भरकर दृष्टि की तूलिका से अंकित कर दिया।

चौधरी रणधीरसिंह जी लखनऊ स्टेशन पर प्लेटफार्म से बाहर आ गये। एक ताँगा किराये पर किया और उससे उन्होंने ज्योंही श्री विजय कुमार जी का नाम लिया त्यों ही ताँगे वाला समझ गया। पता बतलाने की आवश्यकता नहीं रही। ताँगा लखनऊ की सड़क पर जा रहा था और चौधरी साहब की प्रतीक्षा-भरी दृष्टि विस्तृत आकाश पर फैल रही थी। उनके नेत्रों के सम्मुख उस दिन का दृश्य चित्रवत् आकर खड़ा हो गया था जब एक दिन उन्होंने नंगे पैर विजय भय्या को अपने कर्कश स्वर से फटकार कर घर से निकल जाने को ललकार

दिया था। विजय का मुखमण्डल उस समय भी सूर्यमुखी की भाँति खिला हुआ था, न चिंता थी न भय, न आतुरता थी न व्यग्रता। चलते समय एक बार झुककर, विजय ने पिताजी के चरण छुए थे और उसके पश्चात् अपनी दोनों माताओं के चरण छूकर, उन्हें रोते हुए छोड़, वह पैदल स्टेशन की ओर चल दिया था। दूर तक चौधरी साहब ने विजय को जाता हुआ देखा, परन्तु वह आखिर चौधरी रणधीरसिंह का पुत्र था, क्षमा माँगने के लिए न लौटा। आज सात वर्ष व्यतीत हो गये थे इस दुर्घटना को।

चौधरी साहब स्वप्न-सा देख रहे थे कि इसी समय ताँगा एक बँगले के सम्मुख जाकर रुक गया। स्वप्न-सा टूटा तो ताँगा बँगले के सम्मुख बाहर खड़ा था। "क्यों! रुक क्यों गये ?" चौधरी साहब ने तांगेवाले से पूछा।

"बँगला आ गया सरकार।" ताँगे वाले ने कहा।

"तो ताँगा अन्दर ले चलो।" और ताँगा बँगले में घुस गया।

विजय बाबू कोठी के बाहर वाले लॉन में घास पर अकेले बैठे 'नेशनल हैरल्ड' अखबार पढ़ रहे थे। इस प्रकार अचानक ताँगे से पिता जी को उतरते देख कर उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास न हो सका। तनिक ठिठक कर पागल की तरह पिताजी की ओर दौड़ पड़े और पैरों पर गिरकर चरणों को कसकर पकड़ लिया।

चौधरी साहब आत्मविभोर हो गये। एक क्षण प्रस्तर-शिला की भाँति चित्रवत् खड़े रहे और विजय बाबू उनके चरणों में पड़े रो रहे थे। पिता का वह नादिरशाही पाषाण-हृदय आज पिघल कर मोम बन गया था। उन्होंने विजय को उठाकर छाती से लगा लिया। नौकर ने सामान ताँगे से उतार कर अन्दर कोठी मे पहुँचाया और पिता-पुत्र दोनों बैठक में चले गये। इस कठोर हृदय पिता में भी कितना स्नेह है, यह विजय आज परख पाये और उन्हें वास्तव में अपने ही कठोर व्यवहार पर इस समय लज्जा आ रही थी कि उन्होंने जो एक बार घर से मुँह मोड़ा तो फिर

जाने का नाम तक न लिया। पिता ने अगर घर से निकाल ही दिया था क्रोध में आकर तो क्या हुआ? इसमें कोई मान-हानि नहीं थी, अपमान नहीं था, लज्जा नहीं थी। उनका यह कर्तव्य था कि वह फिर जाते और कम-से-कम एक बार अवश्य जाते।

परन्तु गत सात वर्ष की इस लम्बी अवधि में कभी-कभी माता-पिता से मिलने के लिए विजय का मन छटपटाया ही न हो ऐसी बात नहीं थी। कितनी ही बार अपनी माता की स्मृति में अर्धनिमीलित नेत्रों को लिए बैठे-बैठे उन्हें सारी रात व्यतीत हो गई थी, उनका मन हो आया था गाँव लौट चलने के लिए, और बिस्तर बाँध लिया था, परन्तु पिता के वह ज्वाला के समान जलते हुए नेत्रों वाली विकराल मूर्ति उनके मार्ग में आकर खड़ी हो जाती थी जिसने कठोर शीत काल के पाला पड़ते हुए प्रभात में नंगे पाँव और एक कुर्ते के अन्दर विजय को घर से निकाल दिया था, पैरों पर पड़े इकलौते पुत्र को दुत्कार दिया था, ठुकरा दिया था।

विजय ने अपने हाथ से पिता जी का जूता खोला और उनका साफा लेकर खूंटी पर टाँगा। इसके पश्चात् आराम से बैठकर दो हृदयों के बादल उमड़ पड़े। न नहाने का ध्यान रहा, न खाने का। बातों ही बातों में संध्या हो गई। चौधरी साहब ने अपनी दुखदर्द भरी कहानी सुनाई। परिवार की बातों से हट कर इधर-उधर की समस्याओं पर विचार-प्रकाशन हुआ—"गाँवों की दशा बड़ी खराब हो चुकी है बेटा! नीच कमीनों ने सिर पर पैर रखना प्रारम्भ कर दिया है। जमींदारी और सेठ साहुकारी की मान-मर्यादा समाप्त होती जा रही है। अब जो कुछ भी भग्नावशेष कहीं पर दिखलाई दे रहे हैं उनकी भी अन्त्येष्टि क्रिया समीप ही दिखलाई देती है; परन्तु यह सब ऐसा प्रतीत होता है मानो कुछ अच्छा नहीं हो रहा है।"

विजय मुस्करा कर बोला—"यह प्रतीत होना तो स्वाभाविक ही है पिता जी! क्योंकि जब किसी के स्वत्वों पर कुठाराघात होता है और

उसके आराम तथा ऐश में खलल पड़ता है, तो क्या यह उसके भले लगने की बात है ? अंग्रेजों को भारत से चला जाना क्या भला लगा होगा ?"

चौधरी साहब—"परन्तु गुण्डागर्दी का तो बोलबाला होता जा रहा है। आज किसी भी भले आदमी की आबरू आपत्ति में पड़ गई है इसके लिए तुम क्या कहोगे विजय ?"

विजय—"इसके लिए कहने की कोई विशेष बात नहीं है पिता जी ! जब-जब ऐसे क्राँतिकारी परिवर्तन हुए हैं तब-तब इस उथल-पुथल के काल में कुछ अव्यवस्था आ ही जाती है। धीरे-धीरे यह सब ठीक हो जाता है। अंग्रेजों के जाने पर क्या भारत में कुछ कम अव्यवस्था हुई, परन्तु समय और प्रयत्नों ने उन सबको अपने अधिकार में कर लिया। इसी प्रकार गाँवों की भी दशाएँ ठीक हो जायँगी।"

चौधरी साहब—"तब क्या तुम समझते हो कि जमीदारों के साथ अन्याय नहीं हो रहा विजय ?"

विजय—"यदि ऐसा समझता तो मैं इस बिल को ही संसद में न रखता। जिस समय मैं जेल में था तो तभी मैंने लिखा था कि जमीदारी आज या कल समाप्त होकर रहेगी (Zamidari here and after abolished)। यह प्रथा भारतीय मानव-समाज के मस्तक पर एक महान् कलंक का टीका था। इसे मिटना था और यह मिटा। अंग्रेजों ने इस प्रथा को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए स्थापित किया था। आज वह नहीं हैं, तो वह प्रथा भी मरणप्राय है।"

चौधरी साहब आज प्रथम बार अपने जीवन में चुप रह गये, एक शब्द भी न बोले। उन्हें बहुत गहरी ठेस लगी हुई थी। जमीदारी के तीनों गाँव हाथ से निकल गये थे। अपनी बात का इस प्रकार विरोध पाकर भी मौन रह जाना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। विजय बाबू पिताजी के मुख-मंडल पर आने वाले विचारों के उतार-चढ़ाव को बड़ी ही सावधानी से आँक रहे थे। उनकी व्यग्रता देखकर पिता जी से लिपटते

18613

हुए बोले—"आपको ठेस लगी है। पूर्वजों की सम्पत्ति इस प्रकार बैठे बिठाये हाथ से निकल गई, यह मानसिक क्लेश आपको उद्भ्रांत किये डाल रहा है। परन्तु यदि इसके विपरीत आप तनिक यह सोचें कि सरकार ने उस भूमि को जिन लोगों में वितरित किया है उनमें कितने प्राणियों का उससे हित हुआ है। यदि आप यह समझें कि आप उन सभी के पिता हैं और उनका पालन करना आपका कर्तव्य है, तो आपको दुःख न होना चाहिए। आपकी जमींदारी के सभी आदमी मेरे ही समान आपके पुत्र हैं, कुछ लायक और कुछ नालायक। उन्हीं में आपकी अभी जमींदारी बँट गई तो कुछ बुरा नहीं हुआ।"

"यह मन को समझाने की बात है विजय!" गम्भीरता पूर्वक चौधरी साहब ने कहा। "जिसके दिल पर घाव लगता है वही जानता है। तुम जवानी के जोश में भविष्य के अंधकार से अनभिज्ञ हो।"

पिताजी की इस बात का इस समय उत्तर देना विजय ने उचित नहीं समझा, वह चुप हो गये। बातों की धारा बदल कर लाला छगन मगन और मुन्नू लाला पर जा टिकी। हृदय में पीड़ा लिए तनिक व्यंग्य के साथ चौधरी साहब ने कहा—"ऐश कर रहे हैं बाप-बेटे। करोड़ोंपति बने बैठे हैं।"

विजय बाबू यह सुनकर जोर से हँस दिये और फिर एक दम गंभीर होकर बोले—"ऐश एक दिन सभी को करनी है पिता जी! या सभी को समाप्त हो जाना है। एक दिन वह भी रहा है जब वह आपके जूतों की तली चाटते थे और शायद...."

चौधरी साहब—"यह बात नहीं है विजय! लाला छगन मगन हमारा यार है। जो पहले था, वही वह आज भी है। क्या मजाल जो संकेत पर न नाचे। भले ही उसका पैसा मुझे देना हो गया है, परन्तु बात में उसकी कोई फर्क नहीं आ सकता।"

"और मुन्नू लाला!" विजय ने पूछा।

"मुन्नू लाला से कभी भेंट नहीं हुई। गाँव में आने की उसे

आवश्यकता नहीं और शहर गये हमें पाँच वर्ष हो गये। परन्तु कुछ गाँव वाले उनके मित्रों ने शिकायत अवश्य की है कि उसने उन्हें मिलने का अवसर नहीं दिया।"

"अब तो मुन्नू ने कई मिल लगा लिए हैं पिता जी ! यहाँ आया था मेरे पास।"

"कब ?" आश्चर्य-चकित होकर चौधरी साहब ने पूछा।

"कई बार आ चुका है।"

"परन्तु लाला छगन मगन ने मुझ से नहीं कहा।"

"न कहा होगा। हो सकता है उन से भी मुन्नू लाला ने न कहा हो।"

"ठीक है, ठीक है।" कहकर चौधरी साहब शान्त हो गये।

इस विषय में चर्चा फिर आगे न बढ़ी। पिताजी नें विजय को एक दिन के लिए घर चलने को कहा, परन्तु इस समय कुछ आवश्यक कार्य में फंसे होने के कारण विजय बाबू का गाँव जाना सम्भव नहीं था। पिता जी को ही दो तीन दिन रोकने का अनुरोध किया और साथ ही एक पत्र माता जी को पिता जी के यहाँ सकुशल पहुँच जाने के विषय में डाला दिया।

रात्रि को खाना खाकर जब चौधरी साहब पलंग पर लेटे तो विजय बाबू पास में कुर्सी डालकर बैठ गये। गाँव के विषय में और इधर-उधर की बातें होने के पश्चात् चौधरी साहब बोले, "विजय ! तुमने मेरी कठोरता का दण्ड अपनी माता को दिया यह अच्छा नहीं किया। दोष आज मैं अपना गिनता हूँ परन्तु कर्तव्य तुम्हारा भी कुछ था।"

विजय का मस्तक नत हो गया। हृदय में एक गहरी ठेस लगी और उसने अनुभव किया कि वास्तव में उसने अपनी माता के साथ अन्याय किया। परन्तु उस घर से निकलने के पश्चात् विजय ने स और देश-सेवा का व्रत लिया था और उसे वह आज तक निभाता आ रहा था। कितनी अनाथ माताओं का संबल बना, कितने बच्चों उसने आश्रय प्रदान किया, कितने वृद्धोंका ठिकाना बनाया, यह गि

की बात नहीं थी। इन सब माता-पिताओं में फँसकर वह अपनी माता को भूला गया हो, ऐसी भी बात नहीं थी। प्यार वहाँ था और आकर्षण भी परन्तु सिद्धान्त की अवहेलना करके अपने को अपने विचारों को प्रतिकूल केवल पिताजी का आदेश मानते हुए जीवन भर के लिए फंसा लेने को वह उद्यत नहीं था। महाराज दशरथ की आँख मीचकर आज्ञा पालन करने वाला राम वह नहीं बन सका। परन्तु राम की तरह अपने राज्य को ठुकराकर चल देने में उसे आपत्ति नहीं हुई।

"तुम्हारी माँ ने तुम्हारी याद में रो-रोकर आँखें सुजालीं और उसी दिन से एक समय का भोजन छोड़ दिया" दर्द-भरे स्वर में पिता जी ने कहा। "परन्तु मैं तुम्हें फिर भी न बुला सका। मैं समझ रहा था कि तुम जो कुछ भी कर रहे हो वह हमारे परिवार के नाम पर कलंक है, लज्जास्पद है, घृणास्पद है। समय की बदली हुई परिस्थितियों ने आज जब मुझे इस बात का विश्वास दिला दिया है कि तुमने जो कुछ किया वह हमारे परिवार के नाम पर कलंक नहीं था, नहीं है और नहीं होगा तभी मैं अपनी गलती समझ कर तुम्हारे पास आया हूँ।" उसी प्रकार लेटे हुए पिताजी कह रहे थे। "जिस प्रकार तुमने अपने जीवन में कुछ सिद्धान्तों को घटाने का स्वप्न देखा है, उसी प्रकार अपने पारिवारिक मान-मर्यादा की रक्षा करना मेरा भी कर्तव्य है और मैं प्राण रहते-उसका पालन करूँगा।"

"आपके इस महान् कार्य की पूर्ति में विजय आपके चरणों की सौगंध खाकर प्रण करता है कि इस शरीर में प्राण रहते आपका साथ देगा। मेरे और आपके दृष्टिकोण में भेद हो सकता है उद्देश्य में नहीं, कर्तव्य में नहीं और कर्तव्य-पालन की दृढ़ता, व्यग्रता और प्रयत्नों में नहीं।" गम्भीरतापूर्वक विजय ने आज जीवन में प्रथम बार पिता जी के नेत्रों में नेत्र डालकर कहा।

"तुम कर सकोगे विजय!" गम्भीरता पूर्वक पिताजी ने पूछा।

"अवश्य कर सकूँगा पिता जी!" उतनी ही दृढ़ता के साथ विजय ने

गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया।

"मैं अपने जीवन का समस्त उत्तरदायित्व आज तुम पर सौंपता हूँ विजय ! विजय ! धन सम्पत्ति कुछ नहीं है मेरे पास, परन्तु इस सब सम्पत्ति से मूल्यवान् हमारी मान-मर्यादा अभी शेष है। उसकी रक्षा तुम्हें करनी है। पूर्वजों की यही थाती आज तुम्हारे सुपुर्द करने आया हूँ। मैं बूढ़ा हो चुका, पता नहीं कब चल बसूँ।"

"ऐसा न कहिए पिता जी !" विह्वल होकर विजय बाबू बोले। "आपके रहते यह भार मैं सँभालूँ, इसके लिए मुझे बाध्य न कीजिए, परन्तु आपके इस अभिमान को चुनौती देने वाले को मैं सहन न कर सकूँगा, यह आप निश्चय करके जान लीजिए।"

विजय भैया के इन शब्दों में चौधरी रणधीरसिंह जी के जीवन की कितनी शांति छुपी हुई थी यह सम्भवतः विजय बाबू भी नहीं समझ सकते थे। सात वर्ष से बराबर हृदय में दहकने वाली ज्वाला से चौधरी साहब को इन शब्दों ने एकदम निकाल कर बाहर खड़ा कर दिया। उनका हृदय हल्का हो गया और उन्होंने नेत्र बन्द करके आश्वासन भरी श्वास ली। उन्हें उनका खोया संबल मिल गया।

विजय बाबू ने देखा कि पिताजी के मुख-मण्डल पर इस समय पूर्ण शांति विराजमान थी और प्रसन्नता की एक मीठी झलक थी जिसमें जीवन का संचित सुख संनिहित होकर इकट्ठा हो गया था। मानो किसी व्यक्ति की लुटी हुई सम्पत्ति उसे जीवन के अन्तिम क्षणों में अकस्मात् प्राप्त हो गई हो।

चौधरी साहब उठकर बैठे हो गये और फिर चुपचाप खड़े होकर कमरे में इधर-उधर घूमने लगे। उनके पुर्खाओं का गौरव, उनकी मान-मर्यादा, यश और आन-बान का अमर इतिहास इस समय तीव्र रक्त की धारा के समान उनकी नसों में प्रवाहित हो रहा था। उनके आज के इस प्रकार घूमने और एक-एक पग इधर-उधर रखने में एक नवीन विचार-धारा का उदय हो रहा था। युवा अवस्था की स्फूर्ति और जीवन

की महत्वाकांक्षाओं का उज्ज्वल भविष्य उनका भय्या विजय कुमार अपने अन्दर अपने परिवार के नाम और गुणों को समेटे उनके सामने बैठा था। जीवन का यह स्वर्गिक सुख, स्वर्गिक शान्ति का क्षण, स्वर्गिक महिमा का सार आज उन्हें प्राप्त था, वह प्रसन्न थे, सम्भवतः उतने ही प्रसन्न जितने वह उस दिन थे जिस क्षण भय्या विजयकुमार का जन्म हुआ था।

आज चौधरी साहब का सीना गर्व से फूल उठा और जीवन की खोई हुई शांति चुपचाप आकर उनके अंक में बैठ गई। विजय भय्या मौन थे, बिलकुल मौन। उन्हें आज पता चला कि उनके चरित्र में कर्तव्य की दृढ़ता उनकी अपनी न होकर पिताजी की चिर-संचित थाती थी जिसे उन्होंने अपने परिवार के मान-मर्यादा भरे इतिहास की सुरक्षित निधि से विरासत में प्राप्त किया था। उनका मस्तक इस कर्तव्य-परायणता के सामने झुक गया।

[३]

चौधरी रणधीरसिंह जी ने देश की बदलती हुई प्रगति को देखा, दुनियाँ की बदलती हुई परिस्थिति को आँका और अंत में यह निश्चय कर लिया कि जमाने के साथ बदलती हुई राहों को ही हमवार बनाते हुए आगे बढ़ना है। अभी-अभी विजय भय्या ने यही कहा था, "पिता जी! गत महायुद्ध ने जहाँ एक ओर एकतंत्रात्मक सत्ताओं को जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक दिया, वहाँ दूसरी ओर साम्राज्यशाही का भी अन्त हो गया। सामंतशाही और जमींदारी साम्राज्यशाही के ही दो महान् स्तम्भ थे जिन पर कि यह विशाल इमारत आज तक ठहरी हुई थी। साम्राज्यशाही की छत आज जर्जर होकर गिर चुकी है और इन मोटे- मोटे थमलों को हम गिराकर अपना रहने का स्थान साफ कर रहे हैं।"

"जैसा तुम उचित समझो, करो बेटा! क्योंकि अब मेरा मस्तिष्क इस विचारधारा में काम नहीं देता। जब महात्मा गाँधी ने सरकार बरतानिया के खिलाफ नारा बुलंद किया था तो हम उसे महज बेवकूफी समझते थे, मजाक समझते थे। तुम्हारा जेल जाना अपना और अपने परिवार का अपमान समझते थे। उस समझने में दिखावा नहीं था विजय! वास्तविकता थी। साथ ही साथ जब आन्दोलन की लहरें उमड़ती हुई देखते थे तो न जाने मन कैसा हो उठता था। परन्तु खैर! कुछ भी सही, यही सच है कि जिसे हम अपने खान्दान का अपमान समझते थे, वह मान निकला, यश का कारण बना और तुम्हारे जीवन की सार्थकता सिद्ध हुआ।

मेरा पुत्र मुझसे योग्य बन सका इसका मुझे हर्ष है।"

"ऐसा न कहिए पिता जी!" कहकर विजय बाबू पिता जी से

लिपट गये। आज पिता ने भी अपने योग्य पुत्र को छाती से लगाकर वर्षों की जलन को दूर किया। उन्हें अपना खोया हुआ मोती मिल गया।

"आपके चरित्र की दृढ़ता ने मेरे चरित्र को दृढ़ बनाया है पिता जी! कठिन-से-कठिन यातनाओं और आपत्तियों में भी मुस्कराना मैंने आपसे सीखा है। यह विजय चौधरी रणधीरसिंह जी के चरणों का एक रज-कण है। आपकी कठोरता में कितनी दया और कोमलता छिपी हुई है इसका ज्ञान किसी अन्य को नहीं। मैं चाहता हूँ कि अब आप जीवन के अन्तिम दिन समाज और जनता की सेवा में लगा दें। फिर आप देखिये कि आपको कितनी शान्ति मिलती है, कितना सुख मिलता है।"

"मैं तय्यार हूँ बेटा! और अब जब तुम गाँव में आओगे तो तुम्हें अपने पिता के रास्ते बदले हुए मिलेंगे, उसका जीवन बदला हुआ मिलेगा।"

"मैं बहुत शीघ्र आऊँगा पिता जी! मेरी दोनों माताओं को मेरा चरण छूना कह दीजिये और कह दीजिये कि मैं उनसे मिलने के लिए उनसे भी अधिक व्याकुल हूँ। चचा भोजनाथ जी और लाला छगन मगन जी को भी मेरा प्रणाम कहिए और हाँ वह तो मैं भूल ही रहा था। आपकी उस सिल्लो रानी का क्या हालचाल है?"

"सिल्लो नहीं, उसे शीलकुमारी कहो विजय! उसने एम. ए. पास कर लिया है। बड़ी ही योग्य लड़की है, परन्तु उसकी विचारधारा बड़ी तीव्र होती जा रही है।"

"यह बात है" मुस्कराकर विजय ने कहा।

"हाँ, आज वह हल्के-मोटे आदमी को अपने सामने कुछ नहीं गिनती। एक तूफान मचाया हुआ है उसने आस-पास के देहात में। मजदूरों का एक संघ बना लिया है। जो मजदूर इस संघ के नियम को तोड़ता है उसे संघ से बहिष्कृत कर दिया जाता है और यही उसके लिए

एक बड़ी यातना है। उसने मजदूरों का दृढ़ समुदाय बना लिया है।"

"तब तो वास्तव में बड़ी योग्यता का कार्य किया है। हम भी तो यही चाहते हैं पिता जी ! हमारा पंचायत-राज्य और क्या है ? इसके द्वारा भी हम यही चाहते हैं कि लोग अपनी समस्याओं का निपटारा स्वयं ही कर लें और उनके लिए व्यर्थ अदालतों की खाक न छाननी पड़े।"

"तुम क्या चाहते हो और वह क्या चाहती है, यह वहीं आकर समझना। वह क्या चाहती है यह समझने का मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया। तुम क्या चाहते थे यह आज देख सका हूँ। सो हम लोग तो समय से पिछड़े हुए व्यक्ति हैं और तुम लोग समय से आगे-आगे दौड़ते हो। तुम लोगों की चाल चलना तो दूर की बात है, केवल कदम से कदम मिलाकर चलना भी हमारे लिए सम्भव नहीं।"

"यह बात मैं नहीं मानता पिताजी ! मैं कोई नई चीज नहीं चाहता। मैं वही चाहता हूँ जिसे आप भी चाहते हैं। क्या आप नहीं चाहते कि भारत में रहने वाले सभी व्यक्ति सम्पन्न होकर सुख तथा शांति का जीवन व्यतीत करें ?"

"चाहता हूँ बेटा ! परन्तु यह मेरे हाथ की बात नहीं और जो बात मेरे हाथ की नहीं उस पर विचार करना मैंने सीखा ही नहीं। इसे तुम मेरी संकुचित मनोवृत्ति भी कह सकते हो, परन्तु मैं सीमित ही रहना चाहता हूँ। सीमित होने की तो कोई सीमा बाँधी जा सकती है परन्तु विस्तार का कोई अन्त नहीं। सुख और शांति का सम्बन्ध धन और वैभव से उतना अधिक न होकर आत्मा से है। हमारा देश आत्मा-प्रधान देश रहा है और इसके विचारकों ने अपने इस विश्वास को जीवन में घटा कर प्रमाणित भी कर दिया है।"

विजय पिता जी की विचार-धारा के सम्मुख नतमस्तक हो गया। भारतीय जीवन किस प्रकार अध्यात्मवाद से जड़तावादकी ओर बढ़ता जारहा है, इस प्रभाव से विजय बाबू अनभिज्ञ नहीं थे। इसे वह अभाव का प्रभाव मानते थे। मानव के जीवन का संघर्ष बढ़ रहा है और उसके साथ-साथ

जीवन की समस्याएँ भी। समस्याओं के सुझाव भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं परन्तु उन सुझावों को कार्यरूप में परिणत करने का कार्यक्रम इतना जटिल है कि उनके सुझावों से और जटिल समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार मूल समस्या का तो समाधान हो नहीं पाता और नए कार्य-कलाप प्रधान बन कर सामने आ जाते हैं।

बिस्तर नौकर ने लेजाकर ताँगे पर रख दिया और फिर चौधरी साहब तथा विजय बाबू भी उसमें बैठ गए। स्टेशन तक कोई और बात न हुई। विजय बाबू के विवाह का प्रश्न चौधरी साहब के मस्तिष्क में तीव्र वेग के साथ चक्कर लगा रहा था, और यही वह प्रश्न था जिसके लिए उन्हें एक दिन विजय बाबू को घर-निकाला देना पड़ा था, परन्तु वह उसके विषय में कुछ संकेत न कर सके। इच्छा रहते हुए भी उन्होंने उसे दबाने का प्रयत्न किया परन्तु उनके मुख पर आने वाले भावों को विजय बाबू परखने में भूल न कर सके।

"आप मुझसे कुछ कहने के लिए यहाँ आये थे पिताजी ! परन्तु आज्ञा न की आपने।"

"नहीं विजय !" विचारों को दबाकर चौधरी साहब बोले। "मुझे अब कुछ नहीं कहना है। तुम सब प्रकार योग्य और समर्थ हो। मैं तो अब तुम्हें और तुम्हारे हर कार्य को अपना आशीर्वाद ही दूँगा, कोई सुझाव नहीं।"

"आपको मेरे विवाह का प्रश्न उद्विग्न कर रहा है, यह मैं जानता हूँ। विवाह मैं अवश्य करूँगा, यह आप निश्चयपूर्वक जान लें; और हो सकता है इसमें कुछ और अधिक विलम्ब न हो। साथ ही यह भी आप को विश्वास दिलाता हूँ कि वह विवाह या तो आपकी अनुमति से होगा अन्यथा होगा ही नहीं।"

"ऐसा न कहो विजय ! तुम जिसे बहू रानी बनाकर घर में लाओगे मैं उसे अपनी पुत्री के समान प्यार करूँगा। परन्तु घर के मान-मर्यादा का ध्यान रखना, बस इतना ही मैं आज चाहता हूँ।"

"ताँगा स्टेशन पर पहुँच गया। टिकट लेकर पिता और पुत्र दोनों प्लेटफार्म पर पहुँचे और ट्रेन तय्यार थी। सामान गाड़ी में रखा कर पिता जी को आराम से बिठला, विजय बाबू खिड़की के सामने प्लेटफार्म पर खड़े होकर बोले, "दोनों माता जी को मेरा चरण छूना कहना न भूलिए और चचा भोजनाथ तथा लाला छगन मगन को प्रणाम। गाँव के सभी आदमियों को मेरा प्रणाम कहिए।"

सिगनल नीचे गिरा, गाडी ने सीटी दी, ऐंजिन ने विसिल दिया और गाड़ी चल पड़ी। चौधरी साहब ने खिड़की से सिर बाहर निकाल कर विजय बाबू के सिर पर मुख से बिना एक शब्द भी बोले, हाथ रख दिया। कुछ दूर तक पिता और पुत्र के पसीजे हुए नेत्र एक दूसरे में समाये रहे। परन्तु यह दृश्य धुँधला पड़ता चला गया और दूरी के गर्त में दोनों की प्रतिमाएँ लुप्त हो गईं। अब दोनों की दृष्टि के सम्मुख खाली आकाश था और न जाने कितनी वस्तु। दोनों के नेत्र मुँद गये और एक क्षण तक पिता ने पुत्र की और पुत्र ने पिता की अन्तिम झाँकी को सँजोनें का प्रयत्न किया।

चौधरी साहब सीट पर बैठ गये। उनका मन इस समय हल्का भी था और भारी भी। वह आनन्द का भी अनुभव कर रहे थे और मन में उद्भ्रांति-सी भी प्रतीत हो रही थी। परन्तु तुरन्त ही उन्होंने अनुभव किया कि भारीपन अस्थायी था और आनन्द स्थायी। आज इस बूढ़े मन में भी न जाने कैसी-कैसी गुदगुदियाँ उठ रही थीं। चौधरी साहब ने जीवन भर कोरी ऐश की छानी थी। लम्बी-चौड़ी जमीदारी की आमदनी थी और खर्च कुछ था नहीं। आप, अपनी दो चौधरानियाँ और विजय बाबू, बस यही तो था सारा परिवार। पाँच भाइयों के आप एक लाडले सुकुमार थे जिन्हें पाँच माताओं ने बड़े लाड-चाव से पाला था। क्या मजाल थी कि कहीं धूल भी लगी हो आपके।

आज कुछ करने की चेतना उनके मन में अंकुरित हो रही थी। उन्हें गाँव में पहुँच कर अपना रास्ता बदलना था। जमीदारी के ठाट-बाट

और वह कूड़ा रौब-दौब सब समाप्त कर डालना है। और भी न जाने कितनी तरह की बातें उनके मस्तिष्क में आ रही थीं और वह अपने व्यवहार से अब अपने विजय को यह दिखला देना चाहते थे कि यदि उनका विजय घर का मोह त्याग कर इस प्रकार विरक्त हो सकता है तो विजय का पिता भी सांसारिक माया में ही लिप्त रहकर मरना नहीं चाहता। वह भी परोपकार करना जानता है। उसने भी बड़े-बड़े यज्ञ कराये हैं, तालाब खुदवाये हैं, धर्मशालाएँ बनवाई हैं, स्कूलों में चन्दा दिया है, विद्यार्थियों को वजीफे बांटे हैं, गरीबों को अन्न बांटा है और अन्त में जमींदारी लुट जाने के पश्चात् भी उसके विशाल हृदय में दया भरी पड़ी है, निर्दयता नहीं, संकुचित विचार-धारा नहीं, स्वार्थ नहीं। हाँ, आत्म-सम्मान अवश्य है और उसकी वह प्राण रहते रक्षा करेगा।

चौधरी साहब गाँव में पहुँचे तो गाँव वालों ने उन्हें घेर लिया। विजय भय्या से गाँव के सभी लोग प्रसन्न थे। कितने ही काश्तकारों के लगान का रुपया वह अपने को पढ़ाई के मिले हुए रुपये में से पिता जी से छुपा कर चुकता कर देते थे। इधर सात वर्ष से विजय बाबू के गाँव में न आने से यह सभी लोग दुःखी थे और अनेकों बार चौधरी साहब से उन्हें खोज लाने के लिए प्रार्थना भी करते थे। चौधरी साहब की चौपाल पर भीड़ लग गई। लाला छगन मगन ने चौधरी साहब के आने का समाचार पाया तो वह भी अपनी ढीली धोती को सँवारते हुए उधर ही दौड़ लिए।

"विजय भय्या को साथ नहीं लाये न! फिर कोई झगड़ा कर लिया होगा।" तनिक मुँह फुलाते हुए लाला छगन मगन बोले।

"नहीं सेठ! झगड़ा-वगड़ा उससे क्या करना था? वह आयगा, बहुत शीघ्र आयगा। कुछ आवश्यक काम थे जिनके कारण साथ न आ सका। तुम जानते ही हो कि मंत्री लोग कितने व्यस्त रहते हैं?"

"हाँ हाँ, क्यों नहीं? क्या नहीं जानता मैं चौधरी साहब! शहर में सभी लोग इतने व्यस्त रहते हैं। हमारे मुन्नू लाला को ही देख लो

जाकर कि फुर्सत ही नहीं मिलती किसी से मिलने की। ड्योढी पर अपना कारट लिए जाने कितने सूट-बूट धारी महाशय हर दम डटे रहते हैं।" लाला छगन मगन तौंद पर हाथ फेरते हुए सामने के पलंग पर डट कर बोले।

"अरे जाओ भी लाला छगन मगन! तुम्हें तो स्वप्न में भी अपने मुन्नू लाला ही मुन्नू लाला दिखलाई देते हैं। कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगवा तेली! कुछ समानता है भला दोनों में? बात कहाँ की हो रही है और फटकारने लगे अपनी ही आकर।" चौधरी भोजनाथ तनिक गर्म होकर बोले।

"गर्म न हो भय्या भोजनाथ! मुन्नू लाला छगन मगन का बेटा है और अपने बेटे में पिता को कितने-कितने गुण दिखलाई देते हैं यह क्या तुम नहीं जानते हो?" मुस्कराते हुए चौधरी रणधीरसिंह जी बोले। "आप सभी भाइयों को विजय भय्या ने हाथ जोड़ कर प्रणाम कहा है और लाला छगन मगन जी आपको भी।"

यह सब बातें हो ही रही थीं कि इतने में सामने से शीलकुमारी आ पहुँची और भीड़ में आगे बढ़कर चौधरी साहब के सामने पहुँचते हुए बोली, "क्या विजय बाबू नहीं आये ताया जी?"

"अरे! शीलो रानी! हाँ नहीं आये बिटिया!" चौधरी साहब ने उत्तर दिया।

"ठीक है", मुस्कराते हुए शीलकुमारी ने कहा। "आगामी सप्ताह के लिए उनका प्रोग्राम निश्चित हो चुका है, इसी लिए वह नहीं आ सकते थे। मैं यही सोच रही थी कि वह किस प्रकार आ सकेंगे। खैर! परन्तु ताया जी! मेरी तो आपने विजय बाबू से खूब बुराई की होगी।" और इतना कहकर मधुर मुस्कान के साथ शीलकुमारी ने चौधरी रणधीरसिंह जी के डबडबाये हुए प्रेमार्द्र नेत्रों में नेत्र डाल दिये।

चौधरी रणधीरसिंह, जो शूद्रों को छूना भी पाप समझते थे, जिन्होंने कुओं और मन्दिरों पर चमारों और भंगियों के चढ़ने का विरोध किया

था, आज गाँव की इस एकत्र भीड़ के सामने गम्भीरतापूर्वक आगे बढ़ते हुए शीलकुमारी के सामने आकर खड़े हो गये। फिर स्नेह के साथ उस कमनीय बालिका की चिबुक पर अपनी एक बूढ़ी उँगली लगाकर उसका मुख ऊपर को उठाते हुए बोले, "तुम्हारी बुराई मैंने नहीं की बिटिया! बल्कि तुम्हारे कार्य की प्रशंसा ही की थी और विजय भय्या ने भी तुम्हारे संगठन की बात सुनकर बहुत सराहना की।"

"सच!" आश्चर्य प्रकट करते हुए शील कुमारी ने कहा।

"सच!"

इस समय यहाँ का सम्पूर्ण वातावरण शांत हो गया था। सभी लोग इन दोनों प्राणियों की बातें सुन रहे थे। दोनों चौधरानियाँ भी अन्दर की खिड़की वाली चिक से सटी हुई खड़ी थीं।

"शीलो बिटिया! आज तुम्हारा यह ताया जो तुम्हारे सामने खड़ा है वह बिल्कुल ही बदल गया है। कुछ तबदीली देख रही हो तुम इसके अन्दर?"

शीलकुमारी उसी प्रकार टकटकी लगाये उनके मुख पर देखती रही, एक शब्द भी न बोली। आज इस मुखमंडल पर क्रोध नहीं था, शांति थी; व्यग्रता नहीं थी, मुस्कान थी; तेज था, सरलता थी और था दया तथा कृपा का अपूर्व साम्राज्य।

"जमींदारी सब चली गई। जो हमारा बड़ा फार्म है वह भी हम आज से तुम्हारे संघ को तुम्हारे संरक्षण में सम्मिलित खेती करने के लिए देते हैं। हमारी चौपाल का वह कमरा हॉल और उसके सामने का दालान तुम्हें गाँव वालों के लिए पुस्तकालय और वाचनालय खोलने के लिए देते हैं और अपनी इस सम्पूर्ण हवेली में एक बड़ा स्कूल स्थापित करेंगे। हम कल ही अपने परिवार के साथ अपनी छोटी हवेली में चले जायँगे।"

यह बातें किसी की कुछ समझ में न आईं, परन्तु शीलकुमारी यह सुनकर बड़े उत्साह के साथ गाँव वालों की ओर मुख करके बोली,

"कुछ सुना आप लोगों ने। इसका नाम है त्याग। आज ताया जी के जीवन का यह परिवर्तन हमारे गाँव के प्रत्येक नर-नारी को उसके कर्त्तव्य की ओर ले जाने वाला होना चाहिए।"

शीलकुमारी के शब्द उस मौन वातावरण में सभी लोगों ने सुने और लाला छगन मगन को तो पूर्ण विश्वास हो गया कि अवश्य विजय भय्या ने चौधरी साहब को कोई ऐसा कटु उत्तर दिया है कि जिसे सुनकर इनका दिल टूट गया है। गहरी चोट आई है इनके हृदय पर....और वह विह्वल होकर आगे बढ़ते हुए बोले, "यह क्या कह रहे हैं चौधरी साहब ! इस प्रकार की बातें मुख से न निकालिये। यह पुर्खाओं की हवेली इन व्यर्थ की चीजों के लिए नहीं छोड़ी जा सकती।"

चौधरी साहब मुस्करा दिये और लाला छगन मगन के कंधों पर हाथ रखते हुए बोले, "लाला छगन मगन अब वह पुर्खाओं का खुमार आँखों से निकल गया। दुनियाँ को करवटें बदलते हमने अपनी आँखों से देखा है, और वह न रुक सकी। हमें भी अपनी राहें बदलनी होंगी। यदि हम न बदलेंगे तो समय स्वयं उन्हें बदल देगा।"

"यही होगा ताया जी ! यही होगा। निश्चित रूप से यही होगा। और चचा छगन मगन जी आप तो ध्यानपूर्वक जान लें कि यह बैठे-बैठे मुफ्त का खाने वाला जमाना अधिक दिन साथ नहीं दे सकता" शीलकुमारी ने कहा।

"मैं मुफ्त की खाता हूँ। मैंने आज तक कभी मुफ्त की नहीं खाई बिटिया ! तू तो हर समय मेरे ही सिर रहती है। सच कहता हूँ कि सरसों से मटर, मटर से चना, चने से कपास, कपास से गेहूँ और इसी तरह तराजू से तोलते-तोलते कलाई और कंधा दोनों पके फोड़े के समान हो जाते थे। तनिक जाकर अपनी चची से तो पूछ कि कितनी देर तक रात को बैठ कर बेचारी सेका करती थी हमारी जवानी के दिनों में।" लाला छगन मगन मुँह बनाते हुए गम्भीरतापूर्वक बोले।

"सब पूछ चुकी हूँ चचा जी ! लेकिन अब यों बचकर निकल

भागने से काम नहीं चलेगा। जब ताया जी ने हवेली दी है तो इसमें स्कूल की स्थापना तो होगी ही और रुपया भी आपको देना ही होगा।" शीलकुमारी ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"देखो बिटिया! मैं साफ कहे देता हूँ। रुपये पैसे का मामला मुन्नू लाला जानें। मुझे तो अब सन्यासी ही समझ लो! सुबह-शाम को खाना भर खा लेता हूँ और बस उसके पश्चात् भगवान् का नाम। रुपये-पैसे से तो सम्बन्ध विच्छेद किये एक अर्सा हो गया। सच जानना बिटिया! तुम" लाला छगन मगन बोले।

"आपकी बात को भी भला सच न मानूँगी तो सच कहने के लिए हमारे यहाँ और कौन आयेगा चचाजी!" और इतना कहकर शीलकुमारी जोर से खिल-खिलाकर हँस दी। उसके साथ गाँव के कुछ और मनचले नौजवानों ने भी अपने व्यंग्य-पूर्ण वाक्य कसे परन्तु उन सबका लाला छगन मगन पर कोई प्रभाव न पड़ा, मानो उन्होंने कुछ सुना ही नहीं।

चौधरी रणधीरसिंह जी इस समय बहुत प्रसन्न थे, उसी प्रकार जैसे मजदूर अपने सिर से भारी बोझे की गठरी भूमि पर पटक कर हल्का अनुभव करता है। शीलकुमारी की ओर देखकर बोले, "शीलो! लाला छगन मगन पर इस प्रकार दाव चलने वाला नहीं दीखता।"

"दाव नहीं चलेगा तायाजी! ऐसी बात तो नहीं है, परन्तु हाँ देर अवश्य लग रही है। हमारे कानूनों की पेचीदगियों ने ही हमारे समाज की प्रगति में बाधा डाली हुई है। एक आदमी दिनदहाड़े डाका डालता है, दूसरों की जेबें कतरता है, गरीबों का रक्त चूसता है और हल्के-मोटों को साबुत ही निगल जाता है परन्तु यह सब कानून का आश्रय लेकर करता है और कानून उसकी कमर ठोककर थपकियाँ देता हुआ कहता है शाबाश! तुम हो वास्तव में चतुर जो हमारे भी कान काट कर संसार को मूर्ख गिनते हुए अपना उल्लू सीधा करते चले जा रहे हो। और दूसरी ओर एक चार हड्डियों का सूखा पिंजर यदि अपनी नोंचती हुई आत्मा की शांति के लिए किसी दूकान से एक मुट्ठी चना उठाकर खा लेता है

तो उसे चोरी और डकैती के अपराध में हथकड़ी-बेड़ी लगाकर हवालात के हवाले कर दिया जाता है। यह है न्याय।"

"खैर! जो कुछ भी सही, परन्तु स्कूल के लिए तो चचाजी को रुपया देना ही होगा। घी सीधी उँगलियों से नहीं निकलेगा तो तिरछी करके उँगलियाँ डालनी होंगी।" शीलकुमारी गम्भीरतापूर्वक मस्तक पर सलवटें डाल कर बोली।

"बिटिया तू तो मेरे ही पीछे पड़ जाती है हर बात में। मैं मना थोड़े ही करता हूँ देने के लिए, परन्तु यह सब है तो मुन्नू लाला के ही हाथ में, मैं केवल इतना ही कह रहा हूँ।" यह बात लाला छगन मगन ने घबरा कर तनिक काँपते हुए स्वर में कही।

चौधरी भोजनाथ का सीना गर्व से इस समय बालिश्तों ऊपर को उछल रहा था। शीलकुमारी उनकी इकलौती पुत्री थी और उसका आस-पास के इलाके में बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर उन्हें अपनी जवानी के दिन स्मरण हो आते थे जब उनकी काली तनी हुई मूँछों के ऊपर नजर जमाने का भी साहस किसी ऐरा-गैरा में नहीं होता था।

चौधरी भोजनाथ, जो किसी जमाने में भोजा चमार करके प्रसिद्ध थे, आज ग्राम-पंचायत के प्रधान थे। चौधरी रणधीरसिंह जी के संकेतों पर नाचने वाली यह उस शक्ति के केन्द्र थे जिसके बल पर जमींदारी का यन्त्र किसी जमाने में बड़े रौब-दौब और ठाट के साथ चलता था। दिन-दहाड़े किसी की फसल का पूरा नाज उठवाकर चौधरी की कोठी में डलवा देना और किसी के खूंटे से जबरन बैल, घोड़ा, बछड़ा, भैंस, गाय इत्यादि खोल लाना इनके लिए साधारण सी बात थी। लाला छगन मगन का भी बिला पटता रुपया वसूल कराने का सम्पूर्ण श्रेय इन्हीं को प्राप्त था। परन्तु जब से शीलकुमारी का इस गाँव में आना हुआ तो चौधरी भोजनाथ के जीवन का रास्ता भी बदल गया। इसके फलस्वरूप चौधरी रणधीरसिंह जी से भी और कई बातों में मन मुटाव हुआ परन्तु फिर भी उनका मान भोजनाथ जी के हृदय में कम नहीं था। यह सच था

कि आज वह उनके कहने से किसी दूसरे का अहित नहीं कर सकते थे परन्तु उनके निजी कार्य के लिए यदि कुए में भी छलाँग लगाने का समय आता तो कोई शक्ति उन्हें छलाँग लगाने से रोक नहीं सकती थी।

[४]

चौधरी रणधीरसिंहजी ने अपनी बड़ी हवेली खाली करदी और वह छोटी हवेली में जाकर रहने लगे। चौधरी साहब की आयु काफी थी परन्तु अभी स्वास्थ्य ज्यों-का-त्यों बना हुआ था, न कहीं से लटा न बटा। वही मूँछों का ताव, वही चेहरे की रौनक, वही आँखों की चमक और वही वाणी का करारापन। जब बोलते थे तो मानो शेर गर्जता था। गाँव के साधारण आदमियों का रौब के कारण उनके सामने आते दम खुश्क होता था परन्तु अब जीवन में एक साथ परिवर्तन आगया, और परिवर्तन भी आया तो ऐसा कि यह एकांत में गंभीर मुख-मुद्रा बनाकर जीवन व्यतीत करने वाला प्राणी तमाम दिन बाल-बच्चों से घिरा हुआ रहने लगा।

गाँव के सभी बच्चे चौधरी साहब को एक बार दिन में नमस्कार करने अवश्य आते थे और प्रातःकाल सबसे पहिले आती थी शीलकुमारी। नित्य सुबह घूमने के लिए चौधरी साहब शील रानी के साथ जाते थे और उस पूरे फार्म का चक्कर लगाते थे जिसे उन्होंने शीला के मजदूर-संघ को दे दिया था। फार्म पर काम करने वाले सभी कार्यकर्त्ता नत-मस्तक होकर चौधरी साहब को प्रणाम करते थे और चौधरी साहब सभी में विजय भय्या की अनुभूति देखकर उन्हें आशीर्वाद देते थे।

चौधरी भोजनाथ, जिसने जीवनभर ऐश की छानी थी, कभी कुछ नहीं किया, वह भी आजकल ग्राम-सेवा के कार्यों में रात-दिन एक करने में लगे रहते थे। प्रातःकाल चौधरी साहब के पहुँचने से पूर्व ही वह फार्म पर जाकर कार्य प्रारम्भ करा देते थे। वहाँ के सम्पूर्ण कार्य की जिम्मेदारी एक प्रकार से उन्होंने अपने कंधों पर सँभाली हुई थी।

"चौधरी भोजनाथ जी ! आपकी यह फसल तो अच्छी उभर कर आ रही है। भाई आलू खूब लगवाया है आपने।" प्रसन्न चित्त शीला के कंधे पर हाथ रखकर खड़े होते हुए चौधरी रणधीरसिंह जी ने सामने लम्बे-चौड़े आलू के खेत पर दृष्टि पसारते हुए कहा। "इस वर्ष खूब आलू बैठना चाहिए। आप सभी लोगों और आपके बाल-बच्चों का भाग्य साथ दे रहा है।"

"खयाल तो मेरा भी यही है चौधरी साहब सब लोग जी-जान से जुटे हुए हैं खेती में। न रात देखी जा रही है न दिन। जिस कार्य को करने के लिए एक की आवश्यकता होती है वहाँ चार दौड़ते हैं" चौधरी भोजनाथ ने कहा।

"तभी तो खेती में भी यह उभार है" चौधरी साहब बोले।

"मेरी यही बात एक दिन आपने काटी थी ताया जी ! आपको याद होगा।"

"मैं भूलने वाला आदमी नहीं हूँ शील बिटिया ! परन्तु स्वार्थ आदमी को अंधा बना देता है, उसकी विचार-शक्ति को संकीर्ण कर देता है। आज इस फार्म को सामने देखकर मैं अपनी उस संकीर्णता को ललकार सकता हूँ, यह साहस मुझ में है।" गम्भीरतापूर्वक चौधरी साहब ने कहा।

"इस फार्म की उभरती हुई खेती को आप इस ग्राम-निवासियों का ही लाभ न गिनें ताया जी ! यह हमारे ग्राम की उन्नति के साथ, हमारे राष्ट्र की उन्नति है, विश्व की उन्नति है, मानव-मात्र की उन्नति है। एक-एक व्यक्ति मिलकर समाज बनता है। इसी प्रकार हमारे देश का एक-एक खेत मिलकर हमारी समस्त उपजाऊ भूमि बन जाती है जिसके ऊपर सही और कर्तव्यपरायणता के साथ कार्य नहीं हो रहा है। यही दशा हमारे कल-कारखानों की भी है। कितना अच्छा हो यदि हम सब अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को समाज के स्वार्थों में तिरोहित कर दें और जीवन में आने वाली प्रत्येक समस्या को व्यक्ति के विचार से न सोचकर समाज

के विचार से सोचें, राष्ट्र के विचार से सोचें और अन्त में मानवमात्र के विचार से सोचें।" शीलकुमारी मुखमंडल पर मधुर मुस्कान लिए यह सब कहती जा रही थी और चौधरी साहब तथा भोजराज जी दत्तचित्तता के साथ यह सुन रहे थे!

"तुमने सच कहा बिटिया! हमें स्वार्थ को दूसरों के हितों में विलीन कर देना ही होगा और ऐसा किये बिना हम अपने जीवन में सुख तथा शांति का साम्राज्य स्थापित नहीं कर सकते।" चौधरी साहब बोले।

"विदेशी साम्राज्यवाद ने हमारे जीवन में संघर्ष पैदा कर दिया, भेदभाव पैदा कर दिया और एक प्रकार की आपाधापी में, हमें डाल कर हमारे सामाजिक जीवन की शृंखलाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया। शासन के सामने से समाज का हित उठ गया और देश का शासन तथा समाज दो पृथक्-पृथक् रास्तों पर बह निकले। शासन की नीति स्वार्थी थी ही, समाज पर भी उसी का प्रभाव पड़ा। 'जैसा राजा तैसी प्रजा' वाले सिद्धांत की अवहेलना नहीं की जा सकती। जिस देश में राज्य को राम और भरत के बीच गेंद की तरह ठुकराया गया वहीं पर इस प्रकार स्वार्थ का बीजारोपण हुआ, समाज के पौधे पर फूट और संघर्ष की कलम चढ़ा दी गई। माली चतुर था उसे उसमें सफलता मिली। वृक्ष बनकर तय्यार हो गया, परन्तु उस पर फल तो वही लग रहे हैं जो लगने थे, जिनकी कलम चढ़ाई गई थी।"

यह कहते-कहते शीलकुमारी का बदन काँप उठा और एक सिहरन के साथ चौधरी साहब ने देखा कि उसकी मुख-मुद्रा गम्भीर हो उठी। वह कड़क कर बोली, "जमींदारी, साहूकारा, सामन्तशाही, अफसरी और पूँजीवाद यह सब उसी वृक्ष की शाखाएँ हैं ताया जी! इन सबको काट डालना होगा। समाज के इस वृक्ष को उसी स्थान से काट डालना होगा जहाँ पर कलम चढ़ाई गई थी। हमारे समाज के वृक्ष को फिर से पल्लवित और पुष्पित होना है। एक नये समाज का इस प्रकार निर्माण

होगा जो जीवन में संघर्ष को लेकर नहीं चलेगा, वह चलेगा शांति को लेकर; द्वेष को लेकर नहीं चलेगा, वह चलेगा प्रेम और सद्भावना को लेकर।"

"जरूर चलेगा बिटिया! जरूर चलेगा। तुम प्रयत्न करो उस समाज को बनाने का और तुम्हारा यह बूढ़ा ताया, जब तक इसकी इन हड्डियों में थोड़ी भी शक्ति अवशेष रहेगी, तुम्हारा साथ देगा, तुम्हारे साथ चलेगा।"

शीलकुमारी के नेत्रों में ज्योति उतर आई और उसके कल्पित समाज का रंगीन सुनहला चित्र उसके सम्मुख झूलने लगा। वह एकदम प्रफुल्लित होकर नाच उठी और तनिक आगे बढ़कर चौधरी साहब का हाथ पकड़ते हुए उत्सुकता से उनके नेत्रों में नेत्र डाल कर बोली, "मेरा स्वप्न अवश्य फलीभूत होगा ताया जी! अवश्य फलीभूत होगा। मेरी कल्पना का समाज साकार होकर मेरे सामने खड़ा है और मैं उसके निर्माण के लिए अपना जीवन लगा दूँगी।"

इसके पश्चात् चौधरी साहब तथा शीलकुमारी जंगल से गाँव की ओर लौट आते थे।

शीलकुमारी की संलग्नता और उसके प्रयत्नों ने कुछ ही समय में चन्दनपुर की कायापलट कर दी। यह वही पुरवा था जिसके अन्दर चौधरी रणधीरसिंह जी की आलीशान हवेली और लाला छगन मगन का पक्का मकान अवश्य थे परन्तु बाकी सब कच्चे और फूटे मकानों का ढेर था; चौधरी साहब और लाला छगन मगन मलमल, तंजेब, रेशम और इसी प्रकार के मूल्यवान् वस्त्र अवश्य पहिनते थे परन्तु अन्य किसी के पास शीत-काल में तन ढाँपने के लिए भी पूरे वस्त्र नसीब नहीं होते थे; चौधरी साहब के यहाँ रथ की जोट अलग थी और तांगे बहली की अलग, परन्तु अन्य गाँव वालों के तो जानवर केवल हड्डियों के पिंजर मात्र ही थे। गाँव के चारों ओर गंदे तालाबों में पानी सड़ता था और उनके किनारों पर झोंपड़ियों के अन्दर रहने वाले काश्तकार मलेरिया के

शिकार बनते थे। गाँव में कोई औषधालय नहीं था और न कुछ अन्य दवाइयों का ही प्रबन्ध था। शिक्षा के नाम पर तो शून्य था ही।

"अब चन्दनपुर चन्दनपुर हुआ है दादा!" संध्या को चौधरी रणधीरसिंह जी के सामने मूढ़े पर बैठते हुए एक नौजवान ने कहा।

"यह सब मेरी शीलकुमारी का प्रयास है बेटा! गाँव के सुधार में उसने तन मन लगा दिया है।"

"यह बात मैं नहीं मानूँगा दादा! यह सब आपकी ही करामात है। इस कलयुग में आपके जैसा त्यागी मिलना कठिन है। आपने तो भय्या विजय का भी ध्यान नहीं रखा।" वहुत गम्भीर होकर नौजवान ने कहा और लगा मानो उसे वास्तव में खेद था, सहानुभूति भी।

चौधरी साहब मुस्करा दिये और यह बात सुनकर फिर उसी प्रकार प्रसन्नता पूर्वक बोले, "बेटा! यह जो कुछ भी मैंने किया है वह समय को देखकर किया है। मैं स्वयं खेती करता नहीं। फिर मुझे खेती करने वालों की भूमि पर अधिकार किये बैठे रहने का भला क्या अधिकार है? विजय जब यह सब आकर देखेगा तो वह स्नेह और प्यार से अपने पिता के चरण चूम लेगा।"

नौजवान के मुख पर उदासी छाई हुई थी। वह किसी मंतव्य से यहाँ पर आया था, परन्तु सफलता न मिल सकी। फार्म की समस्त भूमि चौधरी साहब ने मजदूर-संघ को अवश्य दे दी थी परन्तु पटवारी ने अभी तक काश्त चौधरी साहब की ही अपने रजिस्टर में लिखी हुई थी। वास्तव में जबसे शीलकुमारी का चक्कर इस गाँव पर चला था तब से पटवारी, थाने के दरोगा और कुछ गाँव के गुण्डों का दानापानी बन्द हो गया था। कुछ सरकारी गवाहों की रोजी जाती रही और इसीलिए यह सभी शीला के शत्रु बन गए। यह सब किसी जमाने में चौधरी धनीराम के शागिर्दों में से थे और चौधरी साहब की कृपा-दृष्टि में पल कर उनके संकेतों पर नाचा करते थे परन्तु अब तो चन्दनपुर का नक्शा ही बदल गया था।

शीलकुमारी की हर बात को काटना, उसमें रोड़े अटकाना, उसे भाँति-भाँति से भयभीत करने का प्रयत्न करना, चौधरी साहब को उसके खिलाफ फुसलाने का प्रयास करना, दारोगा जी के पास नित्य सूचना भेजना कि गाँव में कम्यूनिस्टों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, यह सब पटवारी जी का काम था। दरोगाजी ने दूसरे तीसरे दिन गाँव का चक्कर लगाना प्रारम्भ कर दिया। रु ं-रु ं करके गाँव में इधर-उधर कानाफूसी भी प्रारम्भ हो गई और कुछ निर्बल व्यक्ति आतंकित भी हो उठे, परन्तु शीलकुमारी इन सब चालों और होने वाली प्रतिक्रियाओं से भली-भाँति परिचित थी। उसका गुप्तचर-विभाग उसे हर बात की सूचना लाकर दे देता था और वह अपने विपरीत रचे जाने वाले जाल को क्रियात्मक रूप धारण करने से पूर्व ही काट डालती थी।

यह नौजवान जब चौधरी साहब से बातें कर रहा था तो उसी समय वहाँ पर शीलकुमारी भी पहुँच गई। शीलकुमारी को देखकर वह चौकन्ना तो हुआ परन्तु उठ कर चल देने का अवसर उसे न मिला। शीलकुमारी व्यंग्य-वाक्य से बोली, "कहिए महाशय ! क्या यहाँ भी आप अपनी सहानुभूति की वर्षा करने आये हैं ? यह दाल यहाँ पर नहीं गलेगी। कचहरियों में जाकर दूसरों की कमाई से कचौड़ी-पूरी खाने की बान छोड़ कर हमारे मजदूर-समाज का प्रवेश-पत्र भरो। इसी में तुम्हारा कल्याण है। इस पटवारी और दारोगा की गुटबंदी में पड़कर तुम न अपना ही कुछ हित कर सकोगे और न चंदनपुर का ही। चंदनपुर का समाज अपनी राहें बदल चुका है। तुम दो-चार सड़े-गले कीड़े-मकौड़े इस प्रगति में बाधा नहीं डाल सकते। मैं कहती हूँ तुम भी अपना रास्ता बदलो और इन्सान बनकर अपनी योग्यता और परिश्रम के बल पर खाओ। समाज की उन्नति में सहायक बनो, उसके मार्ग में बाधा बनकर मत लेट जाओ। हट्टे-कट्टे नौजवान हो, जमीन पर एड़ी मारो तो पानी निकाल दो, मेहनत कर सकते हो, कमाकर आप खा सकते हो और चारों को खिला सकते हो, फिर क्यों इस प्रकार चुगलखोरी का पेशा अपना

कर समाज के लिए घुन का काम कर रहे हो ।"

नवयुवक की जबान पर एक शब्द भी न आया और उसका चेहरा उतर गया। चौबे जी आये तो छब्बे बनने, दूबे भी न रहे। यहाँ तो पोल खुलने लगी। चौधरी रणधीरसिंह जी इस नवयुवक को ऐसा नहीं समझते थे, इसीलिए उन्होंने इन महाशय की सहानुभूति को सच करके माना था। वह अभी मौन ही थे कि शीलकुमारी फिर उसी व्यंग्य-ध्वनि में बोली, "तायाजी ! आप नहीं जानते यह आपके पास किस लिए आये थे। यह आये थे पटवारीजी के गुमाश्ते बनकर। यह कहना चाहते थे कि आपने जो अपना फार्म मजदूर-संघ को दे दिया है उसपर पटवारी जी ने अभी तक काश्त आपकी ही चढ़ाई हुई है। इसीलिए यह सहानुभूति है कि विजय बाबू के साथ आपने जो अन्याय किया है यदि आप इसका प्रतिकार करना चाहें तो अभी अवसर पटवारीजी ने आपके लिए सुरक्षित रखा हुआ है।"

चौधरी साहब को क्रोध आ गया और वह बलबला कर बोले, "क्योंरे ! छज्जू के बच्चे ! तू भी इतना नीच है, यह मुझे आज ही पता चला है। कमीने ! उठ अभी यहाँ से, नहीं तो ठोकर मारकर चबूतरे से नीचे गिरा दूँगा।"

चौधरी साहब की लाल-पीली आँखें देखकर छज्जू की घिग्घी बँध गई और उसने गिड़गिड़ाकर चौधरी साहब के पैर पकड़ लिए। क्षमा माँगी और साथ ही स्वीकार भी कर लिया कि वास्तव में पटवारीजी ने उसे यहाँ पर इसी प्रयोजन से भेजा था।

शीलकुमारी ने तुरन्त मधुर स्वर में छज्जू को ऊपर उठाकर सामने मूढ़े पर बैठने के लिए कहते हुए मुस्कराकर चौधरी साहब की ओर देखा। "ताया जी ! आप नहीं जानते कि गाँव में कितने कूट-चक्र इस समय भी चल रहे हैं। आप कोई भी भला कार्य कीजिए, उससे कुछ-न-कुछ स्वार्थी लोगों के स्वार्थ को ठेस लगेगी और स्वार्थों को ठेस लगते ही उनके अन्दर शत्रुता की भावना का जन्म ले लेना आवश्यक है। एक

लम्बे काल तक यह स्वार्थी समुदाय आपका दया-पात्र बनकर पिताजी के संरक्षण में पलता रहा और सीधे-सादे चंदनपुरवासियों की कड़ी मेहनत में से चुङ्गी वसूल करके अपना उल्लू सीधा करता रहा। चौधराहट की झूठी शान को स्थापित रखने के लिए आपने जो प्रयत्न किये उन्हें पिताजी ने अपने बल और कार्यकुशलता से पूरा किया। परन्तु क्योंकि उद्देश्य गलत था इसलिए उस उद्देश्य की पूर्ति करने वाले भी गलत ही व्यक्ति होने थे। जिस दिन से मैंने पिताजी का रास्ता बदला उसी दिन से उनके यह गलत साथी लावारिस हो गये। जिन्होंने कर्मठ बनने की शपथ ली उन्हें मैंने अपने मजदूर-संघ में सम्मिलित कर लिया और जिन्होंने अपना पुराना पेशा नहीं छोड़ना चाहा, वह मेरे शत्रु बन गये। यह भाई भी उन्हीं पथ-भ्रष्ट साथियों में से एक हैं। यह मुझे अपना शत्रु भले ही गिनें परन्तु मेरी तो यह दया के ही पात्र रहेंगे।" इतना कहकर शीलकुमारी गम्भीरतापूर्वक मौन हो गई।

"मुझे क्षमा कर दो बहिन! मुझसे अपराध हुआ। मैं आज दादा के सामने कसम खाकर कहता हूँ कि भविष्य में मेहनत करके खाऊँगा। मजदूर-संघ का सदस्य बनकर कभी किसी अन्य की कमाई पर दृष्टि नहीं रखूँगा। पटवारी जी के जाल में अब नहीं फँसूगा मैं" गिड़गिड़ा कर छज्जू ने कहा।

"अपना हृदय स्वच्छ करलो छज्जू! और बस यही तुम्हारी क्षमा है। क्षमा किसी को कोई दूसरा नहीं करता, क्षमा करने वाली होती है आदमी की अपनी आत्मा। जब वह तुम्हें क्षमा कर देगी तो मेरी ओर से भी अपने को क्षमा गिनना। अब तनिक यह तो बतलाओ कि वहाँ और क्या-क्या बातें चलती हैं?" मुस्कराकर शीलकुमारी ने पूछा।

"बड़ी-बड़ी बातें चलती हैं बहिन! उन्हीं के तो चक्कर में हम लोग फँस जाते हैं। पटवारी जी कहते हैं कि हमने दारोगाजी को फोड़ लिया है। वह इस मजदूर-संघ के लल्लू-पंजू नेताओं को छठी तक का खाया-पिया याद करा देंगे और इस चमार की छोकरी सिल्लो को तो

मैंने बड़े घर न भिजवाया तो मेरा नाम पटवारी नहीं। वह कहते हैं कि मैंने पूरा जाल रच लिया है। उसे कम्यूनिस्ट साबित करके निगरानी करा दूंगा और साथ ही किसी आस-पास में होने वाली डकैती में नाम लिवा कर............।"

"उस बदमाश की यह मजाल।" कड़क कर चौधरी साहब अपने को न रोक सकते हुए खड़े होकर बोले। "हरामजादे की खाल खिंचवा लूंगा।" चौधरी साहब का तमाम शरीर कांप रहा था। शीलकुमारी ने देखा कि उनके नेत्र लाल थे और मस्तक पर स्वेद-कण झलक आये थे। उनके हाथों की मुट्ठियाँ बार-बार बन्द होकर खुल रही थीं और दांत आपस में रगड़ खा रहे थे।

शीलकुमारी ने शांत स्वभाव से खड़ी होकर अपने वृद्ध ताया की बँधी हुई मुट्ठियों को अपने हाथों में लेते हुए कहा, "क्रोध न कीजिए ताया जी! उनके हितों पर चोट लगी है, उनके स्वार्थों का भविष्य समाप्त हो रहा है, उनके अधिकार छिन रहे हैं, उनकी प्रभुता नष्ट हो रही है—तो ऐसी परिस्थिति में क्या वह इतना भी न करेंगे? जो जो-कुछ भी करता है उसे करने दीजिए। हमें अपने कार्य पर सतर्कता के साथ आगे बढ़ते चले जाना है। हम रुकने वाले प्राणी नहीं हैं और न ही उनके यह प्रबन्ध हमारे कार्य में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित कर सकेंगे, आप विश्वास रखें। आप आराम से बैठ जाइए।"

चौधरी साहब बैठ गए परन्तु हृदय में जो जलन पैदा हो गई थी वह दिल को मसोसे डाल रही थी। यदि यहाँ पर इस समय शीलकुमारी न होती तो कोई कारण नहीं था कि वह इसी समय चौधरी धनीराम को बुलवा कर यह आज्ञा न दे दिये होते कि—'उस हरामी के पिल्ले पटवारी के बच्चे को जिस दशा में भी वह हो उसी दशा में उठाकर तुरन्त उनके सामने पटक दिया जाय।' उस पटवारी की, कि जिसका परिवार कई पुश्तों से उनके अपने परिवार के टुकड़ों पर पलता चला आया हो, यह मजाल कि शीलकुमारी के लिए इस प्रकार के शब्दों का

प्रयोग करे। यह शब्द उसने शीलकुमारी के लिए नहीं कहे वरन् चौधरी रणधीरसिंह के लिए कहे हैं। शायद यह पटवारी का बच्चा उस भोजनाथ को भूल गया है जो दिन में सरेआम दारोगा और पटवारियों को हमारी आज्ञा से पैर बाँध कर पेड़ पर लटका देता था।

चौधरीसाहब इसके पश्चात् मुख से एक शब्द भी न बोले, परन्तु उनके चित्त की उथल-पुथल उनके मुख पर बार-बार चित्रित हो-होकर विलीन होती जाती थी। उस मुखाकृति को पढ़ने में शीलकुमारी बहुत दक्ष थी, इसीलिए उसने उनकी विचारधारा को बदलने के लिए विषय बदलते हुए यकायक पूछा, "विजय बाबू आने वाले थे न! कोई पत्र नहीं आया, ताया जी?"

यह बात सुनते ही चौधरीसाहब का ध्यान एकदम बदल गया और वह मानो स्वप्न से जागृत होकर बहुत ही प्रसन्नता के साथ बोले, "लो मैं तो इस सब झमेले में भूल ही गया था तुमसे बतलाना। इसी के लिए तो मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था यहाँ बैठा और मैंने झुनिया कहारिन की छोकरी को तुम्हें बुलाने के लिए भेजा भी था।" यह कहते हुए उन्होंने एक पत्र शीलकुमारी के हाथ में दे दिया।

पत्र विजय बाबू का था; वह आज ही संध्या की गाड़ी से आ रहे थे। शीलकुमारी के बदन में पत्र पढ़कर एक प्रेमार्द्र कंपन का संचार हो उठा और मुख की सरलाकृति में हल्की-सी मुस्कान लेकर चौधरी साहब के पुलकित मुख पर अपने लम्बे और बांके नेत्र गड़ाते हुए बोली, "तांगे पर मैं चली जाऊँगी बाबू को लेने के लिए स्टेशन से।"

"इसीलिए तो मैंने बुलाया था तुम्हें बिटिया! मंझोली लेजाओ और चली जाओ बस, समय बहुत थोड़ा रह गया है।" चौधरीसाहब ने कहा।

"जो आज्ञा", कहकर शीलकुमारी खड़ी हो गई। बहलवान इस समय तक मँझोली लेकर आ पहुँचा था और शीलकुमारी उस पर बैठ कर स्टेशन की ओर चल दी। रेलवे स्टेशन चंदनपुर से पछवा की

ओर चार मील पर लगता था। रास्ता कच्चा अवश्य था, परन्तु साफ़ सुथरा था और चौधरी साहब की इस मझोली वाली जोट के लिए तो यह पल-मारते कटता था।

मंझोली के बैलों के गले में बंधी टल्लियाँ अपनी मधुर-ध्वनि से शीलकुमारी के कानों में संगीत ढाल रही थीं और आज तो यह संगीत और भी मधुर हो उठा था। अतीत के सपने और बाल्य-काल की स्मृतियाँ शीला के मस्तिष्क में साकार एकत्र होकर जीवन को हलका और भारी बनाती जा रही थीं। हृदय में एक सरस रस का संचार हो रहा था। जीवन के संघर्ष में अतीत का यह मीठा स्वप्न एक दिन इस प्रकार सजीव हो उठेगा इसका मन में दृढ़ विश्वास होते हुए भी आशाएँ कुछ खोई-खोई-सी हो चुकी थीं। शीलकुमारी आज बहुत प्रसन्न थी, सम्भवतः उतनी जितनी वह जीवन में आज तक कभी नहीं हो पाई। विजय बाबू पर उसे विश्वास था और इस विश्वास की वेदी पर वह अपने प्रेम को सादर समर्पित कर चुकी थी। एक बार समर्पित की हुई वस्तु लौटाई नहीं जा सकती। उसका उचित सम्मान या निरादर करना देवता का काम है और देवता यदि वास्तव में देवता है तो वह उसका निरादर कर नहीं सकता। यह अमूल्य उपहार था, अमूल्य समर्पण और वह दिन, वह समय, वह क्षण, वह मुस्कान, वह कम्पन और मधुर चुम्बन जिसमें दो जीवन मिलकर एक हुए थे, बाहु-पाश के भुजबन्धनों में जकड़े गए थे, उसका साकार चित्र शीलकुमारी के नेत्रों में झूल गया। वह बचपन नहीं था जीवन का एक निखार था, एक निश्चय था।

[५]

विजय बाबू आज सात वर्ष पश्चात् चंदनपुर में आ रहे थे। उनके आने की सूचना पाते ही तमाम गाँव में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। लाला छगन मगन ने भी अपने मुन्नू लाला पर एक चिट्ठी छोड़ दी थी यह सूचना देते हुए। इत्तफाक की बात कि जिस ट्रेन से विजय बाबू उतरे उसी से मुन्नू लाला भी चंदनपुर आये।

ट्रेन आई और रुक गई। शीलकुमारी प्रथम श्रेणी के डिब्बे के सम्मुख विजयबाबू की प्रतीक्षा में थी परन्तु उसमें से उतरे मुन्नू लाला। मुन्नू बाबू शीलकुमारी को देखते ही मुस्कराकर बोले, "अरे! सिल्लो! ओ सिल्लो नहीं शीलकुमारी, तुम यहाँ कैसे?"

"अरे मुन्नू लाला, मुन्नू नहीं, सेठ लाला मुन्नालाल जी आज यहाँ कैसे?" मुस्कान भरे मुख से शीलकुमारी ने कहा। "आज इस ऊजड़ गाँव की ओर कैसे भटक पड़े? सुना है अब तो भारत के इने-गिने पूंजीपतियों में आपकी गिनती होने लगी है।"

"अरे! होने लगी होगी, क्या पता सिल्लो! तुम्हारे लिए तो वही मुन्नू लाला हैं। लेकिन बड़ी शिकायत है हमें कि तुम कभी हमसे मिलने भी नहीं आईं।" आँखें तरेर कर मुन्नू लाला मलमल के कुर्ते की चुनी हुई आस्तीनें सँवारते हुए बोले।

"जी! और आप हमें बुलाते-बुलाते थक गए। बड़े अधीर थे न आप तो हमसे मिलने के लिए। कितने ही पत्र आये आपके, परन्तु हम ही हैं जो उनका उत्तर भी न दिया और मिलने भी न गए।" व्यंग्य भरे स्वर में शीलकुमारी ने कहा।

शीलकुमारी यह बातें कुछ उखड़ते हुए ढङ्ग से कर अवश्य रही थी परन्तु उसकी दृष्टि गाड़ी से उतरने वाले आदमियों में किसी को खोज

रही थी। गाड़ी पर ऐंजिन के पास से लेकर पीछे तक दृष्टि फैलाई तो देखती क्या है कि पीछे गार्ड के पास वाले डिब्बे से एक महाशय छोटा-सा सूटकेस तथा बिस्तर लिए उतर कर खरामा-खरामा उसकी ओर को बढ़े चले आ रहे हैं। यही विजय बाबू थे, अपने प्रदेश के मंत्री। शीलकुमारी स्वयं उसी ओर को झपटी और वहलवान को बिस्तर तथा सूटकेस उनके हाथ से लेने के लिए दौड़ा दिया।

"नमस्कार बाबू!" शीलकुमारी ने सामने पहुँचकर सकुचाकर लज्जा में सिमटते और बल खाते हुए कहा। मानो छुई-मुई की इठलाती हुई पत्तियों को प्यार भरी वायु के प्रवाह ने झकझोर दिया हो।

"अरे! शीलारानी! तुम तो सचमुच ही कितनी बड़ी हो गई हो।" गद्गद होकर विजयबाबू ने शीलकुमारी के दोनों कन्धों पर अपने दोनों हाथ टिकाते हुए कहा। "सचमुच तुम बिल्कुल वैसी ही दीख रही हो जैसी तुम्हारे रूप की प्रतिमा मेरी पुतलियों में एक लम्बे काल से पनपती, खिलती, मुस्कराती और जीवन के विकास के साथ विकसित होकर बन चुकी थी।"

शीलकुमारी संकोच और लज्जावश कुछ न बोली। उसका हृदय इस समय न जाने कैसा हो रहा था। समस्त शरीर में एक कम्पन था और हृदय में गहरी उमंग। फिर एक बार धीरे से नेत्र ऊपर उठाते हुए मधुर स्वर में बोली, "भला इस प्रकार भी कहीं अपनों को भुला देना सुना है बाबू! आज सात वर्ष आपकी प्रतीक्षा करते होगए। कभी दो अक्षर ही लिखकर डाल दिये होते तो कुछ डूबते का सहारा हो जाता।"

विजय बाबू ने एक गहरी साँस ली और फिर धीरे से कहा, "क्षमा कर दो शीलरानी! परन्तु यह सच है कि इन सात वर्षों में तुम्हारी मधुर स्मृति का पूर्ण अधिकार मेरे हृदय पर रहा है। कठोर-से-कठोर आपत्ति के आने पर भी मैंने तुम्हारी उसी स्मृति को अपनी साथिन के रूप में सँजोया है और इसीलिए मैने जेल और हवालात की काली

कोठरियों में भी कभी अपने को अकेला नहीं अनुभव किया।"

शीलकुमारी के नेत्रों से कई गर्म आँसू बहकर विजय बाबू के चरणों पर गिर पड़े। विजय बाबू ने अपनी जेब से रूमाल निकाल कर शील-कुमारी के नेत्र पोंछते हुए कहा, "चलो शीलरानी" और दोनों साथ-साथ हो लिए।

पहलवान ने सामान लेजाकर मँझोली में रख दिया था। मुन्नू लाला अपने ताँगे में जमे थे। विजय बाबू को सामने आते देख मुन्नू लाला अपने ताँगे से बिना उतरे ही कुछ व्यंग्य-ध्वनि के साथ बोले, "मैंने कहा, नमस्कार मंत्री महोदय !"

विजय—"यहाँ मन्त्री नहीं हूँ मुन्नू लाला ! विजय कहकर पुकारिए।"

मुन्नू लाला—"यह कैसे हो सकता है भला विजयबाबू ! हम तो मंत्रीजी ही कहेंगे आपको। यदि कोई अपना आदमी सम्मान पा जाय तो क्या हम उसका आदर न करें ?"

विजय—"परन्तु यह आदर नहीं, व्यंग्य है मुन्नू लाला ! आप यह भी समझते हैं या नहीं।"

शीलकुमारी—"आपने भी क्या बात कही बाबू ! इस बात को समझने का संबंध बुद्धि से है, नोटों की गड्डियाँ गिनने से नहीं ? क्यों मुन्नू लाला ?"

मुन्नू लाला—"बात यह है विजय बाबू ! कि इस सिल्लो के तो हमारी ओर से नौ खून माफ हैं। यह जो चाहे कह सकती है। परन्तु सच यह है कि हम तो अपनों का सम्मान करेंगे ही। आपका सम्मान करना हमारा कर्त्तव्य है। आप आज केवल विजय बाबू नहीं......"

विजय—"क्यों व्यर्थ चापलूसी की बातें करते हो मुन्नू लाला ! मैंने तुम्हें लखनऊ में भी इस प्रकार की बातें करने से रोका था। इस प्रकार की बातों से कोई लाभ नहीं होता और मैं इस तरह की बातें सुनने का बिलकुल आदि नहीं हूँ।"

मुन्नू लाला को ठिठक जाना पड़ा। बातों का विषय ही बदल गया। कहाँ से आना और कहाँ को जाना वाली साधारण बातें होने लगीं। मँझोली और ताँगा आगे बढ़े और बात-की-बात में ताँगा बहुत पीछे रह गया।

शीलकुमारी—"आज छोटी अम्मा आपके आने की प्रतीक्षा में सुबह से फूली-फूली फिर रही हैं और बड़ी अम्मा को तो पूजा से ही फुर्सत नहीं है। खाना भी वह आज तुम्हें खाना खिला कर ही खायेंगीं।"

विजय—"यह बात है, और पिताजी?"

शीलकुमारी—"उनकी प्रसन्नता का बयान तो मैं आपके सम्मुख कर ही नहीं सकती। आज प्रातःकाल घूमने भी नहीं गये। अपने नित्य के सभी काम उन्होंने बन्द किये हुए हैं और तुम्हारी राह में बाहर चबूतरे पर ही मूढ़ा डाले बैठे हैं।"

चौधरी भोजनाथ जाति के चमार हुए तो क्या? चौधरी रणधीरसिंह जी के दाँये हाथ थे, दोनों एक दम अभिन्न, मालिक और दास, साथी और साथी, बड़ा भाई और छोटा भाई। शीलकुमारी भोजनाथ जी की इकलौती लड़की थी और इसकी माँ इसे पाँच वर्ष की ही छोड़कर स्वर्ग सिधार गई थीं। शीलकुमारी की बुआ जिन महाशय को व्याही थीं वह मेरठ-गाँधी-आश्रम में कार्य करते थे और उनका रहना-सहना भी मेरठ में ही था। यही बुआ इस पाँच वर्ष की बच्ची को अपने साथ ले गई थीं। बच्ची होनहार थी। गाँधी-आश्रम के अध्यक्ष श्री विचित्रनारायणजी बच्ची को बड़ा स्नेह करने लगे थे और उन्होंने ही आश्रम की ओर से पाँच रुपया मासिक इस बच्ची की शिक्षा के लिए दिलाना प्रारम्भ कर दिया था।

इस प्रकार पढ़-लिख कर जीवन-पथ पर अवतीर्ण हो शीलकुमारी यह आज एक सुशिक्षित महिला बनी मँझोली में विजय बाबू से गप्पें झाड़ रही थीं और राजनीति पर दोनों के तर्क-वितर्क चलने लगे।"

"कांग्रेस की वर्त्तमान नीति कुछ नहीं है, मैं इसे कुछ नहीं मानती विजयबाबू ! इसमें कोई नवीनता नहीं। वही कटा हुआ पाजामा है जिसे बार-बार थेकली लगाकर आप लोग उपयोगी सिद्ध करने का स्वप्न देख रहे हैं। परन्तु मैं कहती हूँ कि यह ढाँचा ही गलत हो चुका है, इसमें जान नहीं रह गई है। सरकार की योजनाएँ कार्य रूप में परिणत होने से पूर्व ही खोखली हो जाती हैं और कार्य रूप में परिणत होने से पूर्व ही कार्य की महानता और कार्य का लक्ष्य समाप्त हो जाता है तथा इस कार्य की सिद्धि के लिए निश्चित किये हुए धन का अधिकांश भाग कागजों का पेट भरते-भरते ही पूर्णाहुति को प्राप्त हो जाता है।"

विजय—"तुम्हारी यह बातें मैं आंशिक रूप में मानता हूँ शीला रानी ! पर समय लगता है किसी व्यवस्था को बदलने में। अँग्रेजी सरकार से यह खाली दूकान हम लोगों के हाथ लगी है। पहिले हम इसे भरने का प्रयत्न कर रहे हैं फिर इसकी ठीक-ठीक सुरक्षा का भी प्रबन्ध करेंगे। हमें यह करना है यह बात हम भली प्रकार जानते हैं!"

शीलकुमारी—"तो फिर आप लोग, इसका अर्थ यह हुआ कि जान-बूझकर गलती कर रहे हैं। मैं कहती हूँ कि आपकी यह दूकान कभी जीवन में क्या भर सकेगी ? यह कभी नहीं भरेगी। आप तो बिना पेंदी की पतीली में खिचड़ी पकाने का स्वप्न देख रहे हैं। अब आप आन्दोलन-काल में से नहीं गुजर रहे हैं, यह आपका व्यवस्था-काल है। यदि इसमें व्यवस्था आप जनता के सम्मुख न रख सके तो केवल यह कहने भर से कि हम लोगों के सम्मुख अमुक-अमुक कठिनाइयाँ हैं, जनता को सन्तोष नहीं होगा। जनता प्रगति चाहती है, लीचड़पन नहीं; जनता कर्मठता चाहती है, आलस्य नहीं; जनता परिश्रम चाहती है, ऐश नहीं; जनता काम चाहती है, कपड़ा चाहती है, भोजन चाहती है, और मानव-जीवन का विकास चाहती है। यह सब आपको देना चाहिए।"

विजय—"और यह सब कुछ हम दे सकेंगे, हमें पूर्ण विश्वास है। हमारी योजनाएँ कोरी कागजी जमाबन्दी नहीं हैं, उनका विकास सामने

आ रहा है। परन्तु साथ ही यदि जनता केवल बैठी-बैठी हमारा मुँह भर ताकती रही और उसने उनके घरों की लिपाई-पुताई का भी उत्तर-दायित्व सरकार पर ही छोड़ना चाहा, तो हो सकता है हमारी योजनाएँ कुछ पछड़ जाँय !"

शीलकुमारी—"परन्तु ऐसा क्यों ? क्यों जनता आपका साथ नहीं देगी ? जब आप जनता के लाभार्थ कदम उठाएँगे तो जनता आपके साथ होगी, आपसे आगे होगी। जनता किस प्रकार अपने उत्थान में हम लोगों से आगे बढ़कर कर्मठ बनती है इसका ज्वलंत उदाहरण आपका चंदनपुर आपके सामने प्रस्तुत करेगा।" और इतना कहकर शीलकुमारी का सीना गर्व से चार इंच ऊपर को उभर गया।

विजय बाबू यह सुनकर मंत्रमुग्ध होगये। फिर स्नेहपूर्ण दृष्टि से शीलकुमारी के निखरे हुए यौवन-पूर्ण कपोलों की छवि से आच्छादित मुख-मंडल पर अपने नेत्र टिकाकर उसके दोनों कन्धों को पकड़ते हुए धीमे स्वर में बोले, "तुम मेरी कल्पना की साकार देवी हो शीले रानी ! मेरी आकांक्षाओं को साकार रूप देने में तुम अवश्य सफल हो सकोगी।"

शीलकुमारी—"सफलता मेरी नहीं बाबू ! सब ताऊजी के चरणों का प्रताप है। उनका वह प्रजापालक विशाल हृदय अपने में क्या-क्या समेटे बैठा था इसका प्रत्यक्ष रूप आप अब गाँव में चलकर देखेंगे। आपकी सरकार जिस पंचवर्षीय योजना का नगाड़ा पीट रही है उसका निखरा हुआ चित्र आपको चंदनपुर में देखने को मिलेगा। मैं गर्व के साथ कह सकती हूँ कि चंदनपुर आज भारत के सम्मुख उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है।"

विजय—"और चंदनपुर-निवासी भी ?"

शीलकुमारी—"इसमें अभी समय लगेगा। शताब्दियों का गला-सड़ा समाज बदलने में समय लगता है और लगता भी नहीं परन्तु आपकी शासन-व्यवस्था ऐसी लचर है कि जिसमें फोड़े को सड़ने और

पीब पढ़ने के लिए अवकाश की कमी नहीं। फिर भी कर्तव्यशील व्यक्ति को उससे संघर्ष लेना है और मैं ले रही हूँ।"

विजय—"और तुम ले सकोगी शीलरानी! मुझे पूर्ण विश्वास है।" गम्भीरता पूर्वक विजयबाबू ने कहा। "भारत को तुम जैसी कर्मठ देवियों की ही आवश्यकता है।"

सामने चन्दनपुर था। बातों-ही-बातों में चार मील पलक मारते निकल गईं। गाँव में पहुँचे तो बहलवान ने मँझोली दाँई ओर को मोड़ दी।

विजय—"इधर कहाँ जा रहे हो बहलवान?"

शीलकुमारी—"वह ठीक चल रहा है। चौधरी साहब आजकल छोटी हवेली में रहते हैं।"

विजय—"और बड़ी हवेली में?"

शीलकुमारी—"उसमें एक विद्यालय है, एक पुस्तकालय है और एक वाचनालय भी।"

विजयबाबू का हृदय यह सुनकर हर्ष से बाँसों उछलने लगा और शीलकुमारी ने देखा कि उनके मुख पर आने वाली प्रसन्नता के भाव भी छिपे हुए नहीं थे, स्पष्ट थे और उनकी अपने पिताके प्रति श्रद्धा उमड़ी पड़ रही थी। मँझोली छोटी हवेली के सम्मुख पहुँची तो चौधरी रणधीरसिंहजी चबूतरे की सफील पर खड़े बड़ी उत्सुकता से राह देख रहे थे। उनके पीछे बरांडे में खड़ी उनकी छोटी और बड़ी माताजी ने भी अपनी दृष्टि मार्ग पर फैलाई हुई थी। प्रतीक्षा में समय बड़ी बेचैनी से व्यतीत हो रहा था। लाला छगन मगन भी घंटों से चौधरी साहब के पास मूढ़े पर विराजमान थे और चौधरी धनीरामजी अभी-अभी काम पर से आकर खड़े हुए थे, सिर से पैर तक धूल में सने हुए।

विजय बाबू ने मँझोली से उतर कर पहिले पिताजी के चरण छुए और फिर चौधरी धनीराम तथा लाला छगन मगन को आदर पूर्वक नमस्कार करने के पश्चात् अपनी माताओं के पास चले गये। दोनों

माताओं ने एक साथ अपने विजय को प्यार से अंक में भर लिया और कितनी ही देर तक तीनों मौन खड़े नेत्रों से आँसू ढुलकाते रहे। आज सात वर्ष पश्चात् यह कलेजे का टुकड़ा फिर कलेजे से आकर मिला था। एक शब्द भी किसी के मुख पर न आया। खोई हुई निधि आज भगवान् ने लौटाई थी। बस उसी की दया का भार उरों में लिए दोनों माताओं ने अपने को धन्य-भाग्य माना।

इतने में शीलकुमारी भी अन्दर आ गई और यह तीनों पृथक्-पृथक् हो गये। तीनों के नेत्र भीगे देखकर मुस्कराती हुई शीला बोली, "लो माताजी! आपका लाड़ला मैंने खोजकर ला दिया है, अब मुँह मीठा कराइए।"

"मुँह मीठा नहीं बिटिया! पेट भर मीठा खाना है तुम्हें।" छोटी अम्मा ने प्यार से कहा। "बड़ी अच्छी है यह शीला बिटिया विजय! तुम्हारी अनुपस्थिति में हमने इसी को देखकर मन बहलाया है।"

"जी! बड़ी अच्छी है। कहाँ की अच्छी है यह? मैं सब जानता हूँ इसे। यही तो मेरे खिलौने चुरा कर ले जाया करती थी अम्मा जी!"

दोनों अम्मा यह सुनकर हँस पड़ीं। "तुम्हें बचपन की सब बातें याद हैं विजय!"

"और तुमने भी तो एक दिन मेरा मिट्टी का खिलौना तोड़ दिया था बाबू! वह मैंने अपने हाथ से बनाया था। जानते हो उस अकेले के मूल्य के आपके सब खिलौने नहीं थे।" शीलकुमारी मुस्करा कर बोली।

विजय—"सब जानता हूँ, मैं। अपनी चीज सभी को मूल्यवान् लगती है शीलरानी! परन्तु तुम चोर अवश्य थीं और मैं तो समझता हूँ तुम्हारी वह बान आज भी ज्यों-की-त्यों ही बनी हुई है।"

इन दोनों के मधुर उपहास में कैसा मिठास था यह दोनों माताओं से छुपा नहीं था। पाँच वर्ष तक साथ-साथ खेले। मेरठ में लगभग साथ-साथ रहे और पढ़े, अब सात वर्ष से न भेंट हुई, न पत्र आया।

परीक्षा की कसौटी पर दोनों अपने को कस रहे थे—खरे उतरे यह दोनों ने अनुभव किया।

आज शीलकुमारी का अंग-अंग पुलकायमान था। जीवन की मधुरतम आशाओं की शिथिल धारा में मानो बाढ़ आ गई थी। सरिता किनारों से टकराकर ऊपर निकल जाना चाहती थी परन्तु लज्जा का बाँध उसे बरबस लौट जाने पर मजबूर कर देता था, बार बार बल खाकर उभार और विकास को सिमटा कर अपने में ही लौटाने, मुस्कराने और शरमाने के लिए छोड़ देता था। परन्तु यह सब एक मधुर आनन्द की कल्पना का वह सौम्य निखार था जिसमें सब कुछ स्पष्ट होने पर भी कुछ नहीं था। सब मौन, सब आशापूर्ण और प्रतीक्षा की अंक में जीवन के भविष्य को समर्पित किये बैठे थे।

[६]

चौधरी रणधीरसिंह जी अपने पलंग पर गाऊ तकिये से कमर लगाये बैठे थे और पेचवानी की लहरदार नै उनके होठों को लगी थी। इसी समय विजय बाबू और शीलकुमारी ने बैठक में प्रवेश किया। शीलकुमारी प्रसन्नतापूर्वक बोली, "ताया जी ! बाबू को आपका लहलहाता हुआ फार्म दिखला कर लाई हूँ। पिताजी ने आपके फार्म का प्रत्येक विभाग बाबू को घुमाकर दिखलाया और बाबू को वह बहुत पसन्द आया।"

"पसन्द क्यों न आता शीला बिटिया ! बड़ा परिश्रम किया है विजय ! शीला बिटिया ने इस फार्म को बनाने में रात-दिन एक किया है।" स्वाभाविक सरलता के साथ प्रेमार्द्र होकर चौधरी रणधीरसिंह जी बोले।

विजय—"तभी तो यह सब बन सका है पिताजी ! शीलरानी का प्रयास देखकर तो मैं दंग रह गया। आज भारत को ऐसी ही कर्मठ नारियों की आवश्यकता है। अभी-अभी मैं आपका पुस्तकालय, वाचनालय और स्कूल भी देखकर आ रहा हूँ। यह सब देखकर आपके चरणों की रज मस्तक पर लगा लूँ, बस यही मन हो आया।" और यह कहते हुए विजय ने वास्तव में पिताजी के चरणों में सिर टिका दिया और फिर खड़े होकर हाथ जोड़ता हुआ बोला, "पिताजी ! आज मैं गर्व के साथ कह सकता हूँ कि मेरे पिता ने अपने खान्दान पर लगे हुए पुराने देश के प्रति विद्रोह और विश्वासघात के काले धब्बे को धोकर साफ कर दिया।"

चौधरी रणधीरसिंह के नेत्रों में दो मोटे-मोटे आँसू थे। उनका हृदय कह रहा था कि वास्तव में जिसे वह अपने खान्दान की मान और मर्यादा करके सुरक्षित धरोहर के रूप में सँजोये बैठे थे, वह एक

भारी कलंक था, पाप था और अपमान का सूचक था।

शीलकुमारी और विजय दोनों सामने पड़े मूढ़ों पर बैठ गये। विजय बोला, "आपका यह त्याग चंदनपुर के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा पिताजी! और शीलरानी! यह है नये चंदनपुर का निर्माण करने वाली देवी।"

शीलकुमारी मुस्कराकर बोली, "बाबू! मेरी प्रशंसा अधिक न कीजिए वरना मैं फूलकर कुप्पा हो जाऊँगी।"

रणधीरसिंह—"फूलकर कुप्पा होने का तुमने कार्य किया है शीला बिटिया! तुम्हारी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। देहात के जिन कुचक्रों को हम बल और धन से दबा कर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे उन्हें तुमने बुद्धि, दया और सचाई से विफल कर दिया। तुम्हारी योग्यता सराहनीय ही नहीं, प्रशंसनीय भी है। सच मानो, बेटा विजय! कि बहुत से बदमाशों के कुचक्रों को शीला बिटिया ने इस खूबी से निष्फल कर दिया कि उन्हें भी अंत में चरण छूकर क्षमा ही माँगनी पड़ी।"

विजय—"मैं शीलरानी से यही आशा करता हूँ पिताजी! इन्होंने चंदनपुर का जो नव-निर्माण किया है वही अपनी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत हम लोग सामुदायिक प्रयत्नों द्वारा करने जा रहे हैं। आज मैं गर्व के साथ कह सकता हूँ कि मेरा चंदनपुर भारत के लिए इस दिशा में एक ज्वलंत उदाहरण है।"

चौधरी रणधीरसिंह—"और यह उदाहरण प्रस्तुत करने का श्रेय मेरी शीला बिटिया को है।" प्यार से शीलकुमारी की कमर पर हाथ रखते हुए बोले।

यह बातें चल ही रही थीं कि इतने में लाला छगन मगन अपने मुन्नू लाला को लेकर आ पधारे। विजय बाबू ने खड़े होकर लाला छगन मगन का स्वागत किया और इस प्रकार यह स्वागत मुन्नू लाला का भी हो गया। विजय के साथ शीलकुमारी ने भी खड़े होकर नमस्कार किया

और बैठने के लिए दो मूढ़े सामने सरका दिये।"

"विजय भय्या ! चंदनपुर को भूल गये, अपनी माताओं को भूल गये, अपने पिताजी को भूल गये, फिर भला बेचारे छगन-मगन किस खेत की मूली ठहरे ?" बैठते हुए तनिक मीठे व्यंग्य और प्यार के साथ लाला छगन मगन बोले।

विजय—"ऐसा न कहो चचा ! अपना दोष मेरे सिर मँढ़ने से काम नहीं चलेगा। यदि मैं ही यह कहूँ कि पिताजी ने चलो क्रोध में आकर विजय को घर से निकाल ही दिया था तो क्या चचा का यह कर्तव्य नहीं था कि वह अपने भय्या को समझाते और अपने बच्चे को खोजकर घर वापिस ले आते ?"

शीलरानी—"तब तो सोचा था कि चलो अच्छा ही हुआ। नालायक बेटा भय्या के नाम को दाग लगा रहा है, चला गया तो जान बची। आँख फूटी पीर गई, अब सरकारी अफसर तो तंग नहीं करेंगे भय्या को; नित्य पीछे पड़े रहते थे।" और इतना कहकर कटु-व्यंग्य के साथ शीलकुमारी मुस्करा दी। बात सच थी इसलिए लाला छगन मगन कोई उत्तर न दे सके। कुछ लज्जित से होकर बोले, "यह दोष मैं अपना स्वीकार करता हूँ विजय ! परन्तु भय्या के स्वभाव से तुम अपरिचित नहीं हो। इनके विरुद्ध जाने की मेरी तो सामर्थ्य ही क्या थी जब तुम्हारी दोनों माताओं को भी कभी तुम्हारे विषय में कोई बात चलाने का अधिकार नहीं था।"

विजय—"खैर जाने दीजिए, अब उस रामकहानी को। जो हुआ सो अच्छा हुआ और उन्नति, प्रगति तथा मेरी कर्मनिष्ठता का साधन बना। मुझे संघर्षों से खुल-खेलने के लिए पिता जी ने वह अवसर दिया, इसके लिए मैं पिता जी का ऋणी हूँ। अब और कहिए क्या-क्या काम-धंधा चल रहा है। साहुकारा तो मैं समझता हूँ कुछ......"

लाला छगन मगन—"कुछ क्या बेटा विजय ! बिलकुल ठप्प हो गया। वह तो मेरा मुन्नू कुछ ऐसी व्यापार की लैन पर पड़ गया

कि गुजारा चल रहा है, वरना रोटियों में भी घाटा आ जाता।"

यह बात लाला छगन मगन ने ऐसे नाटकीय ढंग से कही कि विजय बाबू को हँसी आ गई। परन्तु हँसी को अन्दर ही रोककर स्वाभाविक मुस्कान के साथ बोले, "तो लेन-देन आजकल आपने बन्द कर दिया है क्या ?"

छगन मगन—"बन्द करके तो गुजारा नहीं चलता भय्या! एक उभारने को दो और देने पड़ रहे हैं आजकल तो।"

शीलकुमारी—"और वह एक देकर दो लिखाने वाली जो प्रथा आपने चालू की है, तनिक उसकी भी सफलता पर प्रकाश डाल दीजिए। वास्तव में बाबू! आप लोगों के सरकारी दाव-पेंच हमारे सेठजी के हथकंडों में जाकर ऐसे चकनाचूर हो जाते हैं, जैसे काँच की चूड़ियाँ। आप दो गज की सोचते हैं तो लाला जी छः गज नाप देते हैं। परन्तु आप इनके गज को नहीं नाप सकते बस यही आपकी असमर्थता है।"

शीलकुमारी की यह बात तीर की तरह लाला छगन मगन और मन्नू लाला के हृदय में चुभकर पार निकलती जा रही थी परन्तु हृदय की पीड़ा को मुख की हँसी में छिपा कर मुस्कराते रहने की कला में बाप बेटे दोनों दक्ष थे। शीलकुमारी की बात को अनसुनी करके मुन्नू लाला जो अभी तक बिलकुल गम्भीर बने बैठे थे अपनी वाणी को और भी गम्भीर बनाते हुए बोले, "विजयबाबू! मैंने एक कपड़े का नया मिल लगाया है। वह पहली जनवरी को चालू किया जायगा। मैं चाहता हूँ कि उसका उद्घाटन आप करें। क्या आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर सकेंगे ?"

विजय बाबू—"क्यों नहीं मुन्नू लाला! आपके मिल का उद्घाटन मैं अवश्य करूँगा और मैं चाहूँगा कि आपका यह मिल दिन दूनी और रात चौगनी उन्नति करे। हमारे देशवासियों को वस्त्र-समस्या को हल करने में सहायक हो और अनेकों बेकार आदमियों को काम की व्यवस्था प्रदान करे।"

मुन्नू लाला—"इसी उद्देश्य को लेकर चल रहा हूँ मैं भी विजय भय्या ! परन्तु शीलकुमारी मेरे हर काम को शंका की दृष्टि से देखती हैं। आज बेकारी और व्यापार की डाँवाडोल परिस्थितियों में भी मैं इतना बड़ा रिस्क लेने जा रहा हूँ क्या इसमें जन-हित का कोई उद्देश्य नहीं है ?"

मुन्नू लाला को यह कहते हुए पसीना आ रहा था और वह अपनी बात का समर्थन चाहते थे विजय बाबू से। विजय बाबू कुछ बोलना ही चाहते थे कि बीच ही में शीलकुमारी मधुर मुस्कान के साथ नेत्रों को अपनी पुरानी बान के अनुसार अर्ध चन्द्राकार रूप में घुमाते हुए बोली, "आपका जन-हित सराहनीय है मुन्नू बाबू ! आप प्रशंसा के पात्र हैं। आपके चरण चूम लेने में भी कोई हानि नहीं है। जितनी प्रशंसा आपकी मैं कर रही हूँ उतनी विजय बाबू से आशा न रखें आप। यह बड़े नीरस आदमी हैं और अब तो और भी नीरस हो गये हैं। सरकार की छाप जो लग गई है इन पर। परन्तु इनकी यह नीरसता आपको रसिकता प्रतीत होती है, ऐसा मैं अनुभव कर रही हूँ। झूठ तो नहीं कह रही हूँ मैं सेठ मुन्नू लाला !"

चौधरी रणधीरसिंह—"शीला बिटिया तुम वाक्-विद्या की धनी हो और अपनी पटुता के आवरण में बेचारे मुन्नू लाला को ढकेलना चाहती हो।"

शीलकुमारी—"जी नहीं ताया जी ! मैं तो इन्हें प्रोत्साहन दे रही हूँ, इतनी प्रशंसा कर रही हूँ जिसे सुनकर इनके हृदय में गुदगुदी उठने लगे, इनकी नसों का रक्त वेग से प्रवाहित होने लगे और प्रशंसा की शक्ति पाकर इनके नेत्रों में आशा की ज्योति उतर आये, वह दम-दमा उठें दो गोल बड़े-बड़े लालों के समान।" और इतना कहकर शीलकुमारी ने बहुत ही गम्भीर मुख बना लिया। मानो जो कुछ भी वह कह रही है, यही उसके विचार हैं।

विजय बाबू मुस्करा रहे थे परन्तु उनकी मुस्कान में कुछ छिपा है

यह शीलकुमारी के अतिरिक्त और कोई नहीं पढ़ सकता था। चौधरी रणधीरसिंह शीला बिटिया के इन गम्भीर व्यंग्य-वाक्यों से भली भांति परिचित थे। लाला छगन मगन अन्दर ही अन्दर शीलकुमारी की बातें सुनकर कुढ़ रहे थे और इसी कुढ़न में एक शब्द भी वह न बोल सके, परन्तु मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब इस छोकरी के कहने पर स्कूल के लिए एक फूटी कौड़ी भी दान नहीं देना है। फिर देखना है स्कूल कैसे चला ले जाती है।

विजय बाबू—"कभी-कभी कटु और व्यंग्य प्रतीत होने वाली बातों में भी कितना मिठास और अपनापन छिपा रहता है चचा! यह आज आप शीलकुमारी की बातों से अनुभव कर रहे होंगे। मुन्नू लाला के कार्य और कर्मठ योजनाओं की यह प्रशंसा न कर रही हों ऐसी बात नहीं है, परन्तु इनका प्रशंसा का ढंग ही निराला है। इसी प्रकार की कटु बात जब यह मुझे कहती हैं तो मैं उसे व्यंग्य न गिनकर वास्तविक मान लेता हूँ और बात सच्ची निकलती है।" लाला छगन मगन के अन्दर होने वाली उथल-उथल को पढ़कर स्वाभाविक सरलता से कहा।

लाला छगन मगन—"परन्तु विजय बेटा! तुम्हारी यह शीलकुमारी तो मानो हमें समाज का वह घृणित अङ्ग समझती हैं कि जिसे काटकर फेंक देना चाहिए।" बहुत ही दुःखी होकर अपने प्रति विजय भय्या की करुणा प्रदर्शित करते हुए कहा।

शीलकुमारी—"यह नाटकीय प्रदर्शन काम नहीं देगा चचा जी! बात जो सच्ची होगी उसे कहने में चूकना मैं नहीं जानती। राजनीति मैंने नहीं पढ़ी और इसीलिए मन के भाव छुपा कर ऊपर से मुस्कराना और अन्दर से कैंची चलाने वाली आदत मुझमें नहीं है। जो देखती हूँ, जो सोचती हूँ, जो अनुभव करती हूँ, जो ठीक समझती हूँ यह झट पट कह डालती हूँ, दिल में नहीं रखती।"

चौधरी रणधीरसिंह—"यह बात तो मैं भी मानता हूँ भय्या छगन मगन! शीलकुमारी के पेट-पाप नहीं रहता और यही कारण है

कि इसकी सचाई ने केवल चंदनपुर ही नहीं, आस-पास के देहात में भी जनता पर अपना वशीकरण मंत्र फूँक दिया है।"

इसी समय अन्दर से नौकर आया। छोटी अम्मा ने विजय बाबू को बुलाया था। उनके अन्दर चले जाने पर मुन्नू लाला बहुत गम्भीर होकर बोले, "तुम्हारा और हमारा किस जन्म का बैर चला आ रहा है शीलकुमारी! जो तुम इस प्रकार निकाल रही हो! तुम्हारे पिताजी का और हमारे पिता जी का ताया जी के संरक्षण में कितना मेल रहा है, यह शायद तुम नहीं जानती हो।"

शीलकुमारी—"मैं सब कुछ जानती हूँ मुन्नू लाला! दूध पीती बच्ची नहीं हूँ। पिता जी अपने काले कारनामों का प्रतिकार आज बुढ़ापे में चौबीस घंटे जुट कर मेहनत करने में कर रहे हैं। ताया जी ने उसका प्रतिकार किस रूप में किया यह आपसे छुपा नहीं है। अब रह गये हैं केवल चचा जी। करना इन्हें भी अवश्य होगा। यदि इस जन्म में कर लेंगे तो आगामी जन्म सुधर जायगा और न किया······" इतना कहकर शीलकुमारी मुस्करा कर चुप हो गई।

मुन्नू लाला—"तो यों कहो कि इस कलि काल में धर्म की व्यवस्था ब्राह्मणों के हाथों से छिन कर तुम्हारे हाथों में आ गिरी है।"

मुन्नू लाला का यह वाक्य सुनकर शीलकुमारी का मुख तमतमा उठा। न जाने कितने विचारों के वेग से मस्तिष्क में खलबली मच गई। इच्छा हुई कि वह अभी इन महाशय पर फटकारों की झड़ी लगादे परन्तु तुरन्त अपने को सँभाल कर उसी संयम के साथ सरलतापूर्वक बोली—"मुँह में राम बगल में ईंट लेकर चलने की प्रथा बन्द करनी होगी मुन्नू लाला! धर्म-व्यवस्था क्या रहेगी और उसका संचालन कौन करेगा, यह मैं नहीं जानती; परन्तु समाज-व्यवस्था में मानव पर धर्म को प्रधानता देने का युग समाप्त हो चुका। पुरानी गिरती हुई दीवारों के जो भग्नावशेष हैं वह या तो समय के थपेड़ों से स्वयं गिर जायँगे या नव-निर्माण के लिए भूमि तय्यार करते समय उन्हें समाज के इंजीनियर

लोग गिरा देंगे । बहर हाल, वह टिक नहीं सकते, उनका जीवन समाप्त हो चुका, उनका युग खत्म हो गया, समाज को आज उनकी आवश्यकता नहीं ।"

मुन्नू लाला कुछ बोले नहीं, केवल ताया जी को नमस्कार करके उठ खड़े हुए और बड़ी शीघ्रता से बाहर निकल गये। लाला छगन मगन भी अपना चिकन का कुर्ता संवारते हुए उठे और चौधरी साहब से विदा ली। थोड़ी देर में विजय बाबू जब अन्दर से निकले तो देख कर बोले—"चले गये मुन्नू लाला ! मैंने तो अन्दर खाना लगवाया था। चलो खैर ! आओ शीलारानी खाना खा लो ! पिताजी ! आपका खाना यहीं पर आ रहा है।"

चौधरी रणधीरसिंह—"तुम लोग खाओ बेटा ! मैं अभी नहीं खाऊँगा, खालूँगा थोड़ी देर में।"

शीलकुमारी और विजय बाबू दोनों अन्दर चले गए।

[६]

मुन्नू लाला चौधरी रणधीरसिंह जी के मकान से उठ तो आये परन्तु उनके पैर भारी हो उठे। उन्हें घर पकड़ना कठिन हो गया। शहर से गाँव में आये थे केवल इसलिए कि 'विजय' बाबू से अधिक खुलकर बातें करने का अवसर मिल सकेगा परन्तु यहाँ तो काण्ड ही विचित्र हो गया। हृदय में एक जलन पैदा हो गई। वह अनुमान भी न कर सके कि आखिर क्या यह वही सिल्लो है कि जिसकी तेल के लिए आगे बढ़ाई हुई कटोरी को अचानक छू देने से झल्लाकर वह रास्ते में फेंक दिया करते थे, और यह रोती हुई रह जाती थी। आज इसने मुन्नू लाला को रुला दिया।

फिर अचानक उनका विचार अपनी विचारधारा के मूल केन्द्र पैसे पर आ टिका। मुन्नू लाला संसार की प्रत्येक वस्तु को पैसे की ही तराजू पर तौलते थे। उनका मत था कि कोई व्यक्ति, चाहे कोई भी विचारधारा रखने वाला क्यों न हो वह शक्ति को पैसे के लिए ही प्राप्त करता है। पैसा ही शक्ति का मूल स्रोत है, उनके दृष्टिकोण से पैसे द्वारा शक्ति प्राप्त करना अहिंसात्मक प्रयास था और जनता को उकसा-फुसला कर उनमें जागृति पैदा करने और उन्हें उभार कर जीवन में चखने के आदेश में हिंसा का मौन प्रचार था। परन्तु यह मौन प्रचार भी है पैसे की ही प्राप्ति के लिए, किसी अन्य कारण-वश नहीं।

एक समय था जब तलवार की धार को शक्ति के लिए और शक्ति को पैसे के लिए माना जाता था परन्तु आज के युग में जनता की आवाज का आवाहन ही दुधारी तलवार है और उसके द्वारा चुनावों में विजय प्राप्त करके संसद् में पहुँच जाना ही पैसे को प्राप्ति के लिए महान् शक्ति है। मुन्नू लाला के इसी विचार को आज इस सिल्लो ने

ललकारा है। परन्तु उसे यह ज्ञात नहीं था कि जिसे प्राप्त करने के लिए वह नादान छोकरी प्रयास करने का स्वप्न देख रही है वह मुन्नू लाला के पास उपलब्ध है।

लाला छगन मगन तो जाकर अपने काम में लग गए परन्तु मुन्नू लाला को चैन नहीं आई। इन्हीं विचारों की उधेड़बुन में उनका मस्तिष्क परेशान था। सिल्लो का इस प्रकार ताया जी और विजय बाबू के सामने उनका अपमान कर देना एक बड़ी बात थी। वह वहाँ इस प्रकार की छोकरियों से अपना अपमान कराने नहीं गये थे। इसी प्रकार की विचार-धारा में चिंतित-से बैठे थे कि उन्हें पटवारी जी सामने से आते हुए दिखाई दिये। पटवारी जी को आते देख मुन्नू लाला ने गाँव के नाते-रिश्ते को निभाया और खड़े होकर प्रणाम किया।

पटवारी जी—"नमस्कार मुन्नू लाला ! तुमने तो भय्या गाँव क्या छोड़ा, गाँव वालों को भी भुला दिया। ऐसा भी भला क्या धन कमाया कि जिसने हमसे हमारा मुन्नू ही छीन लिया।"

पटवारी जी के इस वाक्य में महान् आत्मीयता झलक रही थी जिसे सुनकर मुन्नू लाला शर्म से नीचे को गड़ गए और फिर तनिक धीमे स्वर में आँखें नीची ही किए हुए ही बोले—"धन क्या कमा लिया है पटवारी जी ! फँस गये हैं शहर में जाकर। सच जानिए मरने की भी फुर्सत नहीं मिलती। कितनी ही बार आप लोगों से मिलने की याद सताती है परन्तु मन मार कर ही रह जाना होता है। अकेले आदमी की जान को न जाने कितने-कितने काम पड़े रहते हैं। मैं तो इस धन को मुसीबत गिनता हूँ। गले पड़ा हुआ ढोल है जिसे बजाना पड़ रहा है।"

पटवारी जी—"हमें तो भय्या बहुत प्रसन्नता है कि तुमने जीवन में इतनी उन्नति की। सच जानो, कलेजा आनन्द से फूल उठता है, जब लाला छगन मगन शहर से लौट कर तुम्हारी योग्यता की बातें सुनाते हैं। सुना है करोड़ों का कारोबार फैला लिया है शहर में। देश के बड़े-

बड़े सेठ-साहूकारों में हमारे मुन्नू लाला का भी नाम गिना जाने लगा है।"

मुन्नू लाला—"मैं किस योग्य हूँ पटवारी जी! यह सब तो आपकी कृपा है कि आप अपने बच्चे को इस प्रकार आदर दे रहे हैं।" यह कहते हुए मुन्नू लाला ने पटवारी जी को आदर-सम्मान के साथ अपने सिरहाने पलंग पर बिठलाया और उन्हें बिठलाकर आप अन्दर नौकर से कह आये कि पटवारी जी के लिए एक लम्बा दूध का गिलास, मलाईदार, भर कर ले आये।

इसके पश्चात् गाँव की इधर-उधर की बातें चल पड़ीं। इससे पूर्व कि शीलकुमारी बातों का केन्द्र बनती, नजला पहिले चौधरी रणधीर-सिंह जी पर ही ढलना प्रारम्भ हो गया। पटवारी जी छूटते ही बोले, "मुन्नू लाला! बात क्या है, यह क्या तुमसे छुपी है भला? तुम भी व्यापार करते हो। दुनियाँ की आँखें देख चुके हो। यह त्याग-वाग की बातें तो मैं ऐसी ही समझता हूँ जैसे नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज्ज करने को चलती है और फिर फिसल पड़े की हरगंगा भी इसे मैं मानता हूँ।"

मुन्नू लाला—"मैं सब जानता हूँ पटवारी जी! परन्तु अपनी तो बान व्यर्थ की बातों में पड़ने की नहीं है। अपने मतलब से मतलब रखते हैं, न किसी की रैं-रैं में न किसी की खैं-खैं में। वह तो इस समय नकटे की तरह दूसरों की भी नाकें काटने पर तुले बैठे हैं। इसीलिए तो पटवारी जी! हम अपनी नाक बचाकर शहर चले गये। नहीं तो, क्या यहाँ पर रहकर धुने, जुलाहे और चमारों से अपना अपमान करायें।"

पटवारी जी—"अपनी नाक तो बचाकर ले गये और हमारी नाक का क्या होगा मुन्नू लाला? मैं पूछता हूँ कि क्या हमारी नाक लाला छगन मगन की नाक नहीं है? और यदि यह धुने, जुलाहे, चमार यहाँ हमारा और लाला छगन मगन का अपमान करते हैं तो क्या यह तुम्हारा अपमान नहीं है?"

सुन्नू लाला—"है क्यों नहीं पटवारी जी ? हमारे रहते भला आपको कभी आँच आ सकती है ! यह सच है कि न हमारे पास कभी जमींदारी रही है और न ही कभी अपने किसी काम के लिए हमने आपको कष्ट ही दिया है परन्तु इस आपत्ति-काल में हम आपका साथ छोड़ने वाले नहीं । हमें आप चौधरी साहब न समझें कि जिनके परिवार की पीढ़ी-दर-पीढ़ी आपका परिवार सेवा करता चला आ रहा है और वफादारी निभाता चला आ रहा है, आज आकर वह इस प्रकार आँखें बदल गये कि मानो कभी पहिचानते ही नहीं थे । उनके सिर पर इस चमार की लड़की का इतना भूत सवार हुआ है कि उसके सामने उन्होंने संसार भर को मूर्ख गिनना प्रारम्भ कर दिया है । जमीं-दारी क्या गई अक्ल से भी हाथ धो बैठे । यह इनके पतन का समय है । उजड़ती हुई दुनियाँ है पटवारी जी और बहती हुई गंगा । मरते को चार लात आप भी लगा सकते हैं । यह संसार तो व्यवहार से चलता है । जो जैसा करेगा वैसा भरेगा ।"

पटवारी जी—"यह सब आप ही देख लीजिए सुन्नू लाला, हमें तो कुछ कहना है नहीं । आज चमार की छोकरी गाँवभर को चने चबा रही है उसकी अँगुली के संकेत पर चौधरी साहब नाच रहे हैं । परन्तु पटवारी जी को नचाना खालाजी का घर नहीं है । इसे नचाने के लिए लोहे के चने चबाने होंगे । आज........................" कुछ कहते कहते पट-वारी जी रुक गए और उनके होंठ फड़फड़ाये परन्तु शब्द मुख से बाहर न निकले ।

सुन्नू लाला—"आप कुछ कहना चाहते थे पटवारी जी ! परन्तु रुक गये । मुझे आप अपना बच्चा समझ कर सब कुछ कह सकते हैं । यदि आप सच जानें तो जो बातें गाँव में रहकर आपको आज तक उतनी कष्टप्रद मालूम नहीं हुईं वह एक दिन में मेरे प्राणों को मसोसे डाल रही हैं । मैं तो यहाँ एक दिन भी नहीं रह सकता । जी चाहता है कि इसी समय पर लगा कर उड़ जाऊँ ।"

पटवारी जी—"ऐसी क्या बात है मुन्नू लाला ! बात कहने से मैं नहीं रुक रहा परन्तु आप कतरा रहे हैं।" गम्भीरतापूर्वक पटवारी जी ने कहा।

मुन्नू लाला बहुत चतुर व्यक्ति थे और बड़े-बड़े व्यापारों की गुत्थियाँ क्षण भर में सुलझा देते थे परन्तु पटवारी जी के मस्तिष्क की गुत्थी उनसे सुलझने के स्थान पर और उल्टी उलझ गई। सोच वह यह रहे थे कि वह पटवारी जी के मन की बात निकाल लेंगे परन्तु उनका खलबलाता हुआ नौजवान रक्त अधिक देर तक शीलरानी के शब्दों द्वारा पैदा की गई ज्वाला को अपने में छुपाकर न रख सका। उनकी भावनाओं में उबाल आ गया और वह बौखलाकर बोल उठे, "पटवारी जी ! आप आ गये यह अच्छा ही हुआ; वरना मैं तो स्वयं ही इस समय तुम्हारे पास आने का विचार कर रहा था।"

"मेरे पास !" आश्चर्य चकित होकर पटवारी जी ने पूछा।

"जी हाँ आपके ही पास" मुन्नू लाला ने कहा और फिर अपने दिल की जलन के फफोलों को उन्होंने एक-एक करके पटवारी जी के सामने फोड़ना प्रारंभ कर दिया। मुन्नू लाला अपने मन के फफोलों को फोड़ते जाते थे और पटवारी जी उनके दर्द में दर्दभरा स्वर मिलाकर सहानुभूति प्रकट कर रहे थे।

आज काफी देर रात तक पटवारी जी मुन्नू लाला के पास बैठे रहे। सुबह पता चला कि मुन्नू लाला ने एक सप्ताह के लिए ग्राम में ही रहने का निश्चय कर लिया है। विजय भय्या को दूसरे दिन जाना था। उनके चलते समय सारे गाँव के आदमी एकत्र हो गये और सबको विजय भय्या ने खड़े होकर विनम्र नमस्कार किया। मुन्नू लाला ने अपने मिल के उद्घाटन की बात फिर दोहराई और विजय भय्या ने अपनी स्वीकृति दे दी।

विजय भय्या बहली में बैठ गये। इसी समय भीड़ को चीरती हुई शीलकुमारी भी वहाँ आ पहुँची। उसके हाथों में पुष्पों की एक माला

थी। यह माला लेकर वह बहली पर चढ़ गई और माला विजय बाबू के गले में डालकर मुस्कराते हुए बोली, "यह चन्दनपुर की श्रद्धा के फूलों का हार है। यह फूल चन्दनपुर के कारततारों ने अपने श्रम से जोती हुई भूमि में खिलाये हैं। इन पुष्पों में चन्दनपुर के सामुदायिक प्रयासों की भीनी-भीनी सुगंधि है। इसे आप अपने संसद् के सदस्यों के बीच रखकर चन्दनपुर की प्रगति का संदेश उन्हें सुना सकते हैं।"

विजय भय्या गद्‌गद हो उठे। उनके नेत्रों में चन्दनपुर से विदाई के समय प्रेमाश्रु झलक आये थे। उन्होंने माला को गले से निकालकर हाथ में लेते हुए कहा, "भाइयो! यह आपका उपहार मेरे लिए वह अमूल्य निधि है कि जिसे संसद् में प्रस्तुत करके मैं मस्तक ऊँचा कर गर्व के साथ कह सकूँगा कि यह उपहार मेरे उस गाँव का उपहार है कि जिसने सामुदायिक रूप से अपने उत्थान में सबसे पहिले कदम उठाया है। यह वह गाँव है जो अपनी उन्नति के लिए सरकार का मुँह नहीं ताकता बल्कि सरकार को अपनी प्रगति की ओर देखने के लिए निमंत्रित करता है।

आप भाइयों के अनथक परिश्रम ने चन्दनपुर के लहलहाते हुए खेतों में जो खिलखिलाता हुआ मधुमास बिखराया है वह यहाँ के रहने वालों के जीवन को बदल देगा।"

और इसी प्रकार प्रेमार्द्रता में प्रफुल्लित होकर विजय भय्या तनिक जोश और उत्साह के साथ एक अच्छा खासा व्याख्यान दे गये। उन्होंने अन्त में कहा, "जो लोग अपनी मदद स्वयं करना जानते हैं उनकी संसार मदद करता है, भगवान् मदद करता है।

चन्दनपुरवासियों ने एक बार उत्साहित होकर 'विजय बाबू' की जय का नारा लगाया जिसे रोकते हुए विजय भय्या ने कहा, "ठहरिये! यह मेरी विजय नहीं यह चन्दनपुर के किसान और कास्तकार की विजय है। इस विजय का सेहरा रानी शीलकुमारी के सिर पर आप

लोगों को बाँधना है। इन्हीं के परिश्रम और संरक्षण में आपका चन्दनपुर इतनी उन्नति कर सका है और मुझे विश्वास है कि यदि आप लोगों ने आपसी भेदभावों को भुलाकर रानी शीलकुमारी के आदेशों का पालन किया तो चन्दनपुर बहुत शीघ्र स्वर्ग बन जायगा।"

विजय भय्या को चन्दनपुरवासियों ने विश्वास दिलाया कि वह सामुदायिक रूप से ग्राम की उन्नति में अपना तन-मन लगा देंगे और अपने आपसी संगठन को छिन्न-भिन्न करनेवाली शक्तियों से सीना-सपर होकर लोहा लेंगे।

जिस समय विजय भय्या स्टेशन पर पहुँचे तो वहाँ पर भी अपार भीड़ थी। आसपास के देहातों के लोग जमा थे। सभी ने विजय भय्या के दर्शन किये और अनेकों ने अपने दुःख-दर्द की कहानियाँ भी सुनाईं जिन्हें बहुत ध्यानपूर्वक विजय बाबू ने सुना।

विजय भय्या को पहुँचाकर जब शीलकुमारी लौटी तो गाँव से बाहर ही उनकी भेंट मुन्नू लाला से हुई। मुन्नू लाला एकान्त में घूम रहे थे अपनी दूकान के सामने और यहीं से होकर रास्ता गाँव में आता था। शीलकुमारी इस समय शीघ्रता से निकल जाना चाहती थी परन्तु मुन्नू लाला मुस्कराते हुए बोले, "अरे भाई रानी शीलकुमारी जी! आपने तो हमें ऐसा भुला दिया कि मानो कभी पहिचानती ही नहीं थीं। आखिर कुछ कसूर भी तो हो हमारा? या बेकसूर ही गुनहगार ठहरा दिया गया है हमको। ऐसा तो कभी सरकारे बर्त्तानिया के जमाने में भी नहीं हुआ। फिर आजकल तो अपनी सरकार है। क्या न्याय नहीं होगा हमारे ऊपर?"

शीलारानी ने मुन्नू लाला के मुस्कराते हुए चेहरे पर देखा और दृढ़तापूर्वक वहीं पर ठहरते हुए बोलीं, "मुन्नू लाला! आप भी न्याय की खोज में हैं, यह जानकर आज मुझे प्रसन्नता हुई। परन्तु अभी तो आपको यहाँ छै-सात दिन और रहना है इसलिए खुलकर बातें हो सकेंगी। इस समय मेरे पास अवकाश नहीं है यहाँ बैठकर गप्पें लगाने के लिए।

लेकिन गप्पें लगाना मुझे आता है, इतना आप विश्वास रखें।"

और इतना कहकर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये शीलकुमारी आगे बढ़ गईं। मुन्नू लाला सिटपिटाये से वहीं पर घूमते रह गये। उन्हें इस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो चंदनपुर में इस समय उनसे व्यर्थ अन्य कोई व्यक्ति नहीं है। वह तो खड़े हुए थे शीलकुमारी के मार्ग में तनिक उपहास और व्यंग्य की धारा प्रवाहित करने के लिए परंतु शीलकुमारी के गम्भीर उत्तर ने उनकी हिम्मत पस्त करदी। जाती हुई शीला को शीला कहकर पुकारने का उनमें साहस नहीं था। शिष्टता की सीमा उल्लंघन करके उपहास करने का मन में विचार आते ही धनीराम चौधरी की काली तनी हुई मूछों और पोलेदार लाठी का ध्यान आकर तमाम बदन में सिहरन पैदा कर देता था। बदन के रोंगटे थरथरा कर खड़े होते हुए जालीदार कुर्ते को छेदकर बाहर निकल आते थे।

आज मुन्नू लाला की दृष्टि अचानक ही शीला के रूप-लावण्य पर जो गई तो उन्हें यकायक डाह हो उठी। चमार-जैसी नीच जाति की कन्या में रूप का यह निखार, नयनों का यह कटाक्ष, भँवों का यह तिरछापन, नासिका का यह चढ़ाव, मस्तक का यह उभार, ग्रीवा का यह तनाव, उरोजों का यह चढ़ाव, निगाहों में यह खिंचाव, चाल में यह मस्ती, छवि में यह बाँकापन—यह सब कुछ ग़ज़ब था। घुँघराले बालों का बल खाता हुआ फैलाव मानो मुख-कमल की छत्र-छाया थी। धन्नी चमार की यह वही छोकरी सिल्लो है, जिसे तनिक तनिक सी बात पर वह झटक और पटक देता था, उसे विश्वास नहीं हुआ, अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। इतना महान् परिवर्तन भी हो सकता है यह मुन्नू लाला की समझ में नहीं आया।

इसी समय पटवारी जी वहाँ पर आ गये। पटवारी जी को विशेष आदर-सत्कार के साथ मूढ़े पर बिठलाते हुए मुन्नू लाला भी उनके सामने वाले दूसरे मूढ़े पर बैठ गये। उनके नेत्रों में इस समय शीला का सौंदर्य

किरकिरा रहा था, इसलिए उसी को लेकर बोले, "पटवारी जी ! क्षमा करना, हैं तो आप पिता जी की आयु के परन्तु यदि आज्ञा हो तो एक बात कह डालूँ !"

पटवारी जी—"मुन्नू लाला, इस प्रकार संकोच करोगे तो भला हमारा-आपका साथ किस प्रकार निभेगा ! जब हम लाला छगन मगन के पास बैठेंगे तो हमारी आयु उनके समान होगी और जब आपकी टोली में बैठेंगे तो आपके समान और फिर जनाब बेटे-बेटी तो मित्र के समान हो जाते हैं। उनके सामने भला क्या संकोच ?"

मुन्नू लाला अपने दिल की बात को न दबा सके। शीला के रूप की कुछ व्यक्त और कुछ अव्यक्त-सी चर्चा उन्होंने पटवारी जी के सामने छेड़ दी। पटवारी जी गाँव के माने हुए रसिक व्यक्तियों में से थे। चौधरी रणधीरसिंह जी के इस चरित्र-परिवर्तन से पूर्व उनके मनोरंजन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हीं के ऊपर रहता था। गाँव में आज तक जितने भी स्वांग और तमाशे हुए थे उन सभी का संयोजन आपके ही द्वारा हुआ था। चौधरी साहब के विवाहों तथा अन्य अवसरों पर नृत्य तथा संगीत के प्रबंधक भी आप ही थे। मुन्नू लाला के मुख से यह अटपटे शब्द निकलने की देर थी कि पटवारी जी ने उन्हें ऊपर ही ऊपर लपक लिया और अपनी गोल छोटी-छोटी आँखों को मटकाते हुए मुस्करा कर बोले, "तब तो खूब पटेगी मुन्नू लाला ! हमारी और आपकी दोस्ती। मैं सच कहता हूँ कि दुनियाँ में सब चीज़ें मिल जाती हैं, परंतु स्वभाव नहीं मिलते। हमारा और आपका तो सौभाग्यवश स्वभाव मिल गया। मैं तो तुम्हें कहे देता हूँ कि यह शीला के यौवन का ही उभार है कि जिसने गांव के मनचले नौजवानों को इसके मजदूर-संघ में इस प्रकार जकड़कर बाँध दिया है।"

मुन्नू लाला—"आपका अनुमान बिलकुल ठीक है पटवारी जी ! तो पहिले आपको इस यौवन के मूल स्रोत को सोख लेना होगा, यदि आप इस काश्तकारों के संगठन को तोड़ना चाहते हैं। इनका संगठन

ही आपकी अवनति का कारण है।"

मुन्नू लाला—"बस, क्या पते की बात कह डाली तुमने सेठ! मेरे मन की बात चुराली। मेरे होठों पर से छीन ली, मेरे होठों पर से। अगर तुम्हारा सहारा पा जाऊँ तो सेठ! सच कहता हूँ कि यह सिल्लो, वह धन्ना; यह काश्तकार और वह फनकुचले साँप-जैसे चौधरी रणधीर-सिंह सबको कनकी उँगली के संकेत पर नचा सकता हूँ। इसी चंदनपुर में जहाँ कभी रणधीरसिंह की मूँछों का ताव पुजता था वहाँ मुन्नू लाला की सिठाई पुजेगी।"

और मुन्नू लाला ने आयु में छोटे होने पर भी पैसे की गौरव-गरिमा को अपने अंदर धारण करते हुए पटवारी जी की पीठ थपथपा दी, आश्वासन दे दिया अपनी पूरी सहायता और सहयोग का परंतु साथ ही यह भी कह दिया कि किसी पर उनका नाम जाहिर नहीं होना चाहिये। मित्रता के नाते वह पटवारी जी को यह गुप्त सहायता देंगे। रुपये के लिए पटवारी जी को नहीं भटकना होगा।

[७]

विजय बाबू के चले जाने पर शीलकुमारी का मन बहुत उदास था। वह अपने झोंपड़ीनुमा मकान में खटिया पर एकान्त में बैठी थी मौन, बिलकुल मौन। उसके नेत्र पसीजे हुए थे और मन बार-बार सँभालने पर भी भारी हो उठता था। हृदय में रह-रह एक स्मृति-सी बन जाती थी और न जाने क्यों उसका समस्त बदन रोमाञ्चित हो उठता था। पुरानी स्मृतियाँ मानसिक पटल पर रह-रह कर नवीन बन जाती थीं।

इसी समय शीला के पिता चौधरी धनीराम ने तनिक परेशानी की-सी दशा में चौखट से अन्दर कदम रखते हुए घबराकर कहा, "बिटिया, दारोगाजी आये हुए हैं गाँव में।" और उनके मस्तक पर पसीना आ रहा था।

"तब फिर क्या हुआ ?" कड़ककर खड़ी होते हुए शीलकुमारी ने कहा।

"सुना है पटवारी ने तुम्हारी बड़ी चुगली की है उनसे। तुम्हें कम्यूनिस्ट बतलाया है उस पाजी ने" उसी घबराहट में वह बोले।

"तब फिर क्या हुआ ?" उसी कड़क के साथ शीला बोली।

धनीराम—"सुना है वह मुन्नू लाला की दूकान पर बैठे हैं। वहीं पर तुम्हें बुलवा कर पूछताछ करना चाहते हैं।"

शीलकुमारी—"यह असम्भव है। मुझे वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नहीं। दारोगाजी को यदि कोई पूछताछ करनी है तो क्या यहाँ आने में उनके पैर दुखते हैं। उनके पैरों में मेंहदी नहीं लगी है।" और वह फिर उसी प्रकार स्थिरतापूर्वक अपनी खटिया पर सीना तान कर बैठ गई।

इसी समय सचमुच दारोगाजी वहीं पर आ धमके। उनके पीछे-पीछे पटवारी भी थे और साथ में मुन्नू लाला। इनके अतिरिक्त और भी कई महानुभाव योंही तफरी के लिए साथ लग लिए थे। दारोगाजी को उधर आते देखकर शीलकुमारी ने खड़े होकर उनका स्वागत किया और सुमधुर शब्दों में बोली, "दरोगाजी पधारे हैं। हम गरीब लोगों का सौभाग्य है कि आप-जैसे बड़े-बड़े अफसर भी हमारी झोंपड़ियों पर आकर दर्शन देने लगे।" इस वाक्य में कितना व्यंग्य छुपा था यह समझने में दारोगाजी को देर न लगी, परन्तु शीला के सम्मुख आज प्रथम बार ही आकर वह इतने प्रभावित हुए कि जो सोचकर आये थे वह सब कुछ कहने का साहस न हुआ। फिर आज ही मंत्री विजयकुमार जी के आने और उनके साथ शीला के सम्बन्धों का भी उन्हें पता चल चुका था। जब पटवारी जी को उन्होंने कुछ बातों के लिए आश्वासन दिया था तो उससें और आज की परिस्थिति में उन्हें काफी अन्तर दिखलाई दिया। आज उन्हें लगा कि मानो शीला पर हाथ डालना शेरनी को छेड़ देने के समान है, खतर से खाली नहीं है। पटवारी महोदय ने उसका परिचय जिस साधारण चमार की छोकरी के रूप में दिया था उससे यह रूप सर्वथा भिन्न था।

दारोगाजी को इस प्रकार ठिठकता हुआ देखकर शीलकुमारी तनिक मुस्कराई और आगे बढ़ती हुई बोलीं, "आपको हम गरीबों की झोंपड़ी में प्रवेश करते संकोच हो रहा है दारोगाजी! सो स्वाभाविक ही है। मेज-कुर्सियाँ यहाँ नहीं हैं और न ही कुछ आपके स्वागत का सामान है, परन्तु सद्भावना अवश्य है हमारे पास।

मेरे विषय में आपके पास जो सूचनाएँ गई हैं उनके विषय में मुझे ज्ञान न हो ऐसी बात नहीं, परन्तु मेरे पास उनके विषय में विचार करने के लिए समय नहीं है। मैं जो कार्य कर रही हूँ वह चन्दनपुर की जनता का कार्य है, मेरा व्यक्तिगत नहीं। आज जब आप आये ही हैं तो मैं आपको भी उसमें सहयोग देने के लिए निमंत्रण देती हूँ।"

दरोगाजी चित्रवत् खड़े थे। उनकी समझ में ही नहीं आया कि वह कहाँ आकर फँस गये। फिर भी किसी प्रकार अपने को सँभालते हुए बोले, "श्रीमती शीलकुमारी जी ! आप जानती ही हैं कि हमारा विभाग पुलिस का है और जब हम लोगों के पास कोई सूचना पहुँचती है तो उसकी छान-बीन करना हमारा कर्तव्य है। इसीलिए मुझे यहाँ आना पड़ा।"

शीलकुमारी—"कर्त्तव्य आपको अवश्य पालन करना चाहिए और आपके कर्त्तव्य-पालन में यदि मेरे किसी प्रकार के भी सहयोग की आवश्यकता हो तो मैं उद्यत हूँ।"

दारोगा जी—"मुझे आपसे यही आशा है। तब क्या आप बतला सकेंगी कि आपका कम्यूनिस्ट पार्टी से क्या सम्बन्ध है?"

शीलकुमारी—"मेरा किसी भी पार्टी से कोई सम्बन्ध नहीं और सभी पार्टियों की उन बातों से सम्बन्ध है कि जिनके अपनाने से भारतीय जनता का कुछ हित हो सकता है। मैं एक स्वतन्त्र विचारों की बालिका हूँ जिसने अपने जीवन का उद्देश्य ही समाज की सेवा और पिछड़े हुए लोगों को ऊपर उठाना बनाया है।"

उत्तर बहुत पेचीदा था परन्तु साथ ही शीलकुमारी ने फिर जोरदार शब्दों में कहना प्रारम्भ किया, "दारोगाजी ! मैं जिस दिन से चन्दनपुर में आई हूँ उस दिन से आपने चन्दनपुर की सफाई में कोई परिवर्तन देखा; यहाँ के रहने वालों की कार्य-संलग्नता में कोई अन्तर पाया; यहाँ की पैदावार में कुछ बढ़ोतरी दिखलाई दी ; गाँव के स्वास्थ्य के लिए एक छोटा-सा औषधालय खोला गया है वह भी आपने देखा; नये स्कूल की ओर भी आपने दृष्टि डाली; या केवल पटवारी जी के चुगल-खोर शब्दों की झंकार और मुन्नू लाला की तिजोरी में खनखनाते हुए रुपयों की ही टंकार आपके कानों तक पहुँच सकी ? यह सब क्या है जो मैंने किया ? यह चंदनपुर की जनता की दशा सुधारने का एक ठोस कार्यक्रम है। इसमें न तो कम्यूनिज्म है और न कांग्रेस का आन्दोलन,

न राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की रूपरेखा है और न अन्य ही किसी प्रकार पार्टीबन्दी की समस्या। मेरा कार्य-क्रम बहुत सीधा-सादा है और यदि उसमें भी आपको कहीं पर किसी विशेष प्रकार की बू आती है तो आप स्वतन्त्रता पूर्वक उसकी छान-बीन कर सकते हैं। आपको अधिकार है।"

मुन्नू लाला और पटवारी जी पीछे ही खड़े-खड़े सिटपिटा रहे थे। उन्हें तो आशा थी कि वहाँ पहुँचते ही दारोगा जी की जबान से गालियों का मैगजीन खुल पड़ेगा और शीलकुमारी तथा धनीरामजी पर बेतहाशा उनकी बौछार होनी प्रारम्भ हो जायगी। लीडरी का सब रौब-दाब मिट्टी में मिल जायगा और काश्तकारों के संगठन का वह कच्चा धागा टूटकर उनकी शक्तियों को इधर-उधर बिखर जाने के लिए मुक्त कर देगा जिसमें लपेट कर इस कल की छोकरी ने हमारे विपरीत एक संगठित सेना बनाने का स्वप्न देखा है। परन्तु वह अधकचरा ही रह गया। कलिका अन्दर-ही-अन्दर कुम्हलाने लगी और उसकी पंखड़ियों का विकास बंद हो गया। उनके सीने का उभार आप से आप कुछ दबने लगा और नेत्रों की पलकें आकाश पर से एकदम नीचे उतर कर पैर के नाखूनों पर टिक गईं।

दारोगा जी के आत्म-सम्मान को शीलकुमारी के शब्दों ने आज प्रथम बार जीवन में ललकारा था। सरकारे बर्त्तानिया के शासनकाल में बड़े-बड़े कांग्रेसी नेताओं को चंद घंटों के लिए हवालात में बंद कर देना आपके लिए उपहास मात्र था, खेल था। परन्तु इधर कुछ दिन से बड़ा सोच समझकर चलना हो रहा था। सर्विस के यह अंतिम दिन थे और पेंशन होनें का समय आ रहा था। जहाँ एक ओर मुन्नू लाला और पटवारी जी अपनी पत्तेबाजी की बात सोच रहे थे वहाँ दूसरी ओर दारोगा जी के सम्मुख उनकी अपनी पेंशन का प्रश्न था। विचार गम्भीर था; इसीलिए वह बहुत सोच-समझ कर वाक्य मुख से निकालते थे। मस्तिष्क काम नहीं दे रहा था कि क्या करें परन्तु शीलकुमारी के वाक्य

कटे पर नमक के समान बेचैनी पैदा कर रहे थे।

दारोगा जी आज बातों को आगे न बढ़ाकर यहीं से लौट लिए। चलते समय उन्होंने अपना रौब-दाब कायम रखने के लिए केवल इतना ही कहा, "देखिए श्रीमती शीलकुमारी जी! मुझे इससे सम्बन्ध नहीं कि आप क्या करती हैं, मेरा इससे सम्बंध है कि आप जो कुछ भी करें वह सरकार की नीति के विरुद्ध नहीं होना चाहिए, नियम के विरुद्ध नहीं होना चाहिए।" और इतना कहकर वह गम्भीर होगए।

शीलकुमारी—"आपकी बात मैं भली प्रकार समझती हूँ दारोगा जी! परन्तु आप यह समझलें कि आपकी सरकार क्या चाहती है, इसकी चिंता करने से पूर्व मैं इस बात की चिंता करती हूँ कि चंदनपुर की जनता क्या चाहती है और उसकी क्या आवश्यकताएँ हैं? मैं वही करूँगी जो यहाँ की जनता चाहेगी और यदि वह कार्य किसी प्रकार आपके या आपकी सरकार के विरुद्ध होगा तो आप यदि उचित समझें उसपर कार्यवाही कर सकते हैं। मैं चन्दनपुर की जनता की आवाज को बुलन्द करने से बाज नहीं आऊँगी।"

शीलकुमारी के इस उत्तर से चन्दनपुर की जनता में अपार जोश और सनसनी फैल गई। दरोगा जी का झूठा अभिमान एक दम झन-झना उठा और उनके नेत्रों की पुतलियाँ चढ़ गई। पटवारी जी तथा मुन्नू लाला के दिलों में हल्का-सा उत्साहपूर्ण उभार आया परन्तु तुरन्त ही दारोगा जी के सामने उनकी पेन्शन आकर खड़ी हो गई। वह एक शब्द भी मुख से नहीं बोले। जब चलने को हुए तो शील-कुमारी ने मुस्कराते हुए कहा, "दारोगा जी मेरे शब्दों से आपके दिल को ठेस लगी, यह मैं जानती हूँ; परन्तु इसमें इतनी तो आप मुझे दाद देंगे ही कि मैंने आपको भ्रम में नहीं रखा। जो सचाई है उसकी पूछताछ करने में आप परेशान न हों इसलिए मैंने स्पष्ट करके बतला दिया। मेरा काम किसी को धोका देना नहीं। मैं जो कुछ भी कर रही हूँ उसे चन्दनपुर की जनता के हित में समझकर कर रही हूँ और

आत्मा की सच्ची पुकार मानकर कर रही हूँ। मैं उसे करती रहूंगी और कोई सरकार या सरकार का कर्मचारी उसे रोक नहीं सकता, हाँ सहयोग अवश्य दे सकता है उसमें।"

इसी समय सब ने देखा कि भीड़ फट गई और देखते-देखते चौधरी रणधीर सिंह जी सामने आकर दारोगा जी के पास खड़े होते हुए बोले, "दारोगा जी! आपको भी यहाँ आने का कष्ट उठाना पड़ा। शायद यारों को भी भूल गये! रास्ता जो बदल गया अपना! खाना खिलाना, देना दिलाना सब जमाने की रविश के साथ चलता है दरोगा जी! मूंछों का वह ताव ढीला कर डालो। देख नहीं रहे हो यार के जीवन का परिवर्तन! यह मैंने स्वयं नहीं किया है, समय ने मुझसे कराया है। मैं न करता तो मुझे करना होता। चन्दनपुर की अफ़सरी भी अब समाप्त हो चुकी। केवल सेवा शेष रह गई है। उसे यदि आत्मसम्मान के साथ आप निभाना चाहें तो रास्ता मैं बतला सकता हूँ।"

चौधरी रणधीर सिंह के यह शब्द सुनकर दारोगा जी पर सैकड़ों घड़े पानी पड़ गया। यह वही रणधीर सिंह जी थे जिनके यहाँ से इस थाने का हर दारोगा रिआया की तरह पलता आया था। अनाज, चारा, फल, सब्जी और क्या कुछ नहीं पहुँचता था थाने में? इसके अतिरिक्त समय-बेसमय नकद रुपया भी मिल जाता था। चौधरी रणधीर सिंह इन्हें वास्तव में अपनी ही रिआया मानते थे। खाना-पीना इन लोगों का चौधरी साहब के यहाँ से चलता था और सरकारी वेतन पेन्शन के रूप में बच जाता था।

चौबे जी चले थे छब्बे बनने और यहाँ आकर दूबे भी न रहे। किसी प्रकार अपने बचे-खुचे मान को समेट कर यहाँ से भाग निकलने का अवसर नहीं मिल रहा था दारोगा जी को। आए थे इसलिए कि चौधरी रणधीर सिंह से पृथक् होकर शीला पर दो-चार फटकार मुन्नू लाला तथा पटवारी के सामने डाल कर अपना उल्लू सीधा कर जाएँगे

परन्तु यहाँ आकर तो जान गले में फँस गई। किसी तरह बहाना-सा बनाकर दारोगा जी चौधरी साहब का हाथ हाथ में लिए बातें करते एक ओर निकल गये और बेचारे मुन्नू लाला तथा पटवारी जी भीड़ के बीचोंबीच परकटे पंछियों की भांति छटपटाते हुए रह गए।

इसी समय शीलकुमारी मुस्कराते हुए बोली, "देखा आपने मुन्नू लाला ! रुपये के जूते से अक्ल के जूते की चोट अधिक करारी पड़ती है।"

मुन्नू लाला—"तुम तो मुझे बिलकुल गलत समझ रही हो शील-कुमारी ! मैं कहता हूँ मैं तो समझाता हुआ आ रहा था दारोगा जी को। वहाँ दूकान पर पिताजी ने इन्हें लाख समझाया परन्तु इनका दिमाग है कि उसमें अपनी ही अपनी बात के अलावा और कुछ समाता ही नहीं। और तो और, पटवारी जी ने भी उन्हें कितना सम-झाया कि बस क्या कहूँ। क्यों······"

पटवारी जी—"बिल्कुल बिल्कुल, बिटिया शीला !"

रानी शीला जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ी और उसका हँसना था कि मुन्नू लाला तथा पटवारी जी के चेहरे उतर गये। काश्तकार-दल के लोगों ने कस के खिल्लियाँ उड़ाई और फब्तियाँ कसीं। इन दोनों व्यक्तियों का वहाँ से निकल भागना कठिन हो गया।

शीलकुमारी ने सब को शान्त करते हुए मुन्नू लाला की ओर मुँह करके कहा, "मुन्नू लाला ! आपको पता है कि हमारे गाँव में एक स्कूल खोलने का आयोजन किया जा रहा है। उसके लिए मकान की आवश्यकता थी सो वह चौधरी साहब ने कृपा करके अपनी हवेली ही इस शुभ कार्य के लिए खाली करदी। अब रुपये की आवश्यकता है और वह आपको देना है।"

"मुझे !" आश्चर्य से उचक कर मुन्नू लाला सिटपिटाते हुए बोले।

"जी हाँ, आपको। यह आपको ही देना है और इसके लिए आप

'ना' नहीं कह सकेंगे" गम्भीरता पूर्वक सुशीला ने कहा।

"तब फिर यों कहिए कि यह सरकार का टैक्स है शीलकुमारी जी ! जो 'ना' कहने का भी अधिकार आपने हमसे छीन लिया।" मुस्कराकर तनिक वातावरण को बदलने का प्रयास करते हुए मुन्नू लाला बोले और पटवारी जी भी तनिक पैंतरा बदलकर खड़े हो गए।

शीलकुमारी—"यह हास्य की बात नहीं है मुन्नू लाला ! और न ही आप यह समझें कि आपसे यह कोई भीख माँगी जा रही है। आपके पास जो कुछ भी रुपया यहाँ है वह आपने चन्दनपुर की जनता से कमाया है। उसी रुपये को मैं चंदनपुर की जनता के ही लिए आप से माँग रही हूँ। जो रुपया यहाँ से चुराकर आप शहर ले गये हैं वह आप ने चंदनपुर की चोरी की है।"

मुन्नू लाला—"चोरी !" आश्चर्य चकित होकर तनिक सिट-पिटाते हुए मुन्नू लाला बोले। शीलकुमारी के इस वाक्य ने वास्तव में, अभी कुछ देर पूर्व जो उनके मनमें तनिक हास्य का भाव आया था, उसे काफूर कर दिया।

शीलकुमारी सामने खड़ी जनता की ओर संकेत करते हुए बोली, "यह देख रहे हैं आप चन्दनपुर की जनता को। वह रुपया आपने इन्हीं लोगों से प्राप्त किया है और उसे लेकर अब आप शहर को भाग जाना चाहते हैं। यह नहीं होगा, मुन्नू लाला ! कदापि नहीं होगा !"

"नहीं होगा, नहीं होगा !" जनता की आवाज आई और मुन्नू लाला घबरा उठे। वह भाग जाने का अवसर खोज रहे थे कि इतने में लाला छगन मगन मुन्नू लाला को खोजते हुए उधर ही आ निकले। उन्हें देखते ही शीलकुमारी ने आगे बढ़ते हुए कहा, "लो चचा भी आ गये।" और फिर चचा के सामने पहुँच कर बोली, "चचा जी ! आप तो अब पूजापाठ में लग गये। इसलिए हमने सोचा कि आपको कष्ट न दें इन जरा-जरा सी बातों के लिए ? मुन्नू लाला भी आज चन्दनपुर के सौभाग्य से यहाँ पर उपस्थित हैं। इनसे कहिए कि स्कूल के लिए वह

रुपया दे डालें जिसके विषय में मैंने आपसे बातें की थीं।"

मुन्नू लाला—"बातें की थीं।" चौकन्ने होकर मुन्नू लाला बोले। "मेरे पास कोई रुपया नहीं हैं स्कूल-विस्कूल के लिए देने को।" और इतना कह कर वह चल खड़े हुए।

आगे-आगे मुन्नू लाला और उनके पीछे गाँव के लोगों ने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा, "चोर कहीं के! हमारी खून-पसीने की कमाई को चुराकर अब शहर में जा छुपे हैं।"

[८]

मुन्नू लाला ने करारी मात खाई और उनका पैसा वहाँ साथ न दे सका। उनके साथ-साथ दारोगा जी को भी लेने के देने पड़ गये और पटवारी जी की तो जो दशा थी वह देखते ही बनती थी। लाला छगन मगन ने मुन्नू लाला को समझाते हुए कहा, "बेटा! तू नहीं जानता है अभी चन्दनपुर की पालीटिक्स। यहाँ तो कान दबा कर चलने से ही काम चलता है। तूने खामखा उस धन्ना की छोकरी से झगड़ा मोल ले लिया। बड़े आदमियों का यह काम नहीं कि नीचों के मुँह लगें।"

परन्तु मुन्नू लाला ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। इस समय वह मन ही मन लाला छगन मगन के उस पत्र को कोस रहे थे कि जिस के द्वारा उन्हें चन्दनपुर बुलवाया गया था। न आते, न फँसते। कैसे मैं जाता चन्दनपुर और भाड़ में गिर जाती वह सिल्लो चमारी। उन्हें क्या लेना देना था यहाँ से। ठाठ के साथ अपने आफिस में आराम से बैठे पर बैठ कर मौज की छानते।

कभी-कभी तो मुन्नू लाला झुँझला उठते थे लाला छगन मगन पर, परन्तु फिर कुछ सोच-समझ कर चुप हो जाते थे। यहाँ से दुम दबा कर भाग जाने का अर्थ यह था कि यहाँ जीवन भर कभी नहीं आना है। परन्तु लाला छगन मगन चन्दनपुर छोड़ने वाले नहीं थे। वह लोग इसी उधेड़बुन में थे कि चौधरी धनीराम अपना मोटा सोटा हाथ में लिए मूँछों पर ताव देते हुए सामने से आ धमके और कड़क कर मुन्नू लाला से बोले, "क्यों बे मुनवा! वह कहाँ है छगना मगना?"

मुन्नू लाला के देवता कूँच कर गये। वह तनिक घबरा कर बोला, "बैठो चचा! अभी बुलाता हूँ। जरा दूकान की ओर चले गये हैं।" और इतना कह कर उसने धनीराम के लिए मूढ़ा डाल दिया तथा स्वयं

लाला छुगन मगन को देखने दूकान की ओर चल दिये।

चौधरी धनीराम एक शेर था। परन्तु पुलिस को देख कर एकदम भयभीत हो जाता था। वहाँ उसकी पार नहीं बसाती थी। चौधरी रण-धीर सिंह के संरक्षण में उसके सब खून पुलिस आज तक माफ करती चली आ रही थी। आज दारोगा जी पर बिटिया शीला का वह रौब-दौब उसने देखा कि उत्साह का ठिकाना न रहा। फिर वह भला खटमल पिस्सू जैसे लाला छुगन मगन और मुन्नू लाला को क्या समझता था? और फिर आजकल तो वह स्वयँ भी अफसर था गाँव का, पंचायत का प्रधान।

लाला छुगन मगन हाँपते-काँपते सामने आये तो चौधरी धनीराम उसी प्रकार गम्भीर आवाज में बैठे-बैठे बोले, "क्यों बे छुगना मगना! तेरी यह मजाल। तेरे बेटे ने दारोगा से हमारी बेटी की चुगली की। नीच कहीं के। कमीने! तुझे शर्म नहीं आई। यह जो कुछ भी सिठाई तू लिये फिरता है यह सब इस डंडे की करामात है, यह शायद तू भूल गया है!" और इतना कह कर उसने अपना मोटा डंडा गर्व के साथ उठा कर छुगन मगन की आँखों के सामने कर दिया। 'आदमी वह है जो नमकहराम न हो। तेरी सिठाई कायम रखने के लिए इस डण्डे ने कितने घर उजाड़ दिये, तुझे याद है? लेकिन अब याद रखले कि यह तुझे उजाड़ने और उन वीरान वस्तियों के बसाने की कसम खा कर मैदान में निकला है।" और इतना कहकर चौधरी धनीराम उस मूढ़े पर से उठ खड़े हुए।

लाला छुगन मगन ने गिड़गिड़ा कर चौधरी धनीराम की कौली भर ली और एक साँस में पचास बातें मुन्नू लाला को कह सुनाईं। मुन्नू लाला पर डाली गईं फटकारों से धनीराम का कलेजा कुछ शांत हुआ और वह छुगन मगन के मिन्नत समाजत करने से मूढ़े पर बैठते हुए बोले, "लाला छुगन मगन! हम लोगों के लाख रास्ते बदल गए हों लेकिन हम अपने पुराने कारनामों और अहसानों को भुला कर नहीं चल

सकते। आज चौधरी रणधीर सिंह के पास एक चप्पा भी जमीन नहीं है तो क्या हम उनसे मुँह फेर लें। यह खुदगर्जी होगी, नालायकी होगी। आज तुम्हारे मुन्नू लाला भले ही शहर के सेठ बन गये हों लेकिन टुकड़ों पर यह चंदनपुर के ही पले हैं। इन्हें शहर जाने के काबिल चंदनपुर ने ही बनाया है।"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं।" लाला छगन मगन ने पेट पर हाथ फेरते हुए कहा।

इसके पश्चात् चौधरी धनीराम की बहुत खातिर हुई। मुन्नू लाला स्वयँ दूध का गिलास अपने हाथ से लेकर आये। पटवारी जी ने जब इस कांड की चर्चा सुनी तो वह भी इधर को लपके, परंतु जब वह आये तो चौधरी धनीराम दूध पी रहे थे। पटवारी जी को आते देखकर उन्हें एक बार फिर ताव आ गया। वह दूध का गिलास एक ओर रखते हुए बोले, "जरा इस पाजी से भी सुलट लूँ। अच्छा ही हुआ जो यह भी यहीं पर आगया, वरना मुझे वहीं जाना होता।"

पटवारी जी हलके-फुलके आदमी थे, बदन के छरहरे परंतु अक्ल तेज। चौधरी धनीराम ने इन्हें कितना रुपया आजतक इधर-उधर से खिलवाया था इसका कोई हिसाब नहीं। फिर कई बार उनके प्राणों की भी रक्षा वह कर चुके थे। एक बार उनके मकान में डकैती के समय बंदूकची से केवल अपने डंडे के बल पर बंदूक छीन लेने का उनका ही दम था। पटवारी जी का वहाँ आना था कि चौधरी धनीराम ने फटकारें डालनी प्रारम्भ कर दीं। एक से एक जली-कटी बात कही परंतु पटवारी महोदय सबको शर्बत के घूंट की तरह पी गये। एक शब्द भी मुख से नहीं बोले। यहाँ बोलना और मार खाना बराबर ही था।

अन्त में जब बहुत कुछ कहकर चौधरी धनीराम अपना गोलाबारूद समाप्त कर चुके तो पटवारी जी मुस्कराकर बोले, "बस कह चुके चौधरी धनीराम! तुम भय्या बड़े हो और बड़े भैय्या के रूप में ही हम तो तुम्हें आज तक मानते आये हैं। फिर तुम्हारे कहने का बुरा क्या

मानना ! कुछ और कहलो यदि कहना चाहो तो। परन्तु सच यही है कि हम निर्दोष हैं। आपको यह भ्रम है कि हमने और मुन्नू लाला ने शीलकुमारी की चुगली की थी दारोगा जी से।"

लाला छगन मगन—"यही तो मैं भी कह रहा था पटवारी जी ! हम लोगों का नाम लेकर हमारा और आपका झगड़ा कराने का काम हमारे शत्रुओं का है। परन्तु भला कहीं हमारा आपका भी झगड़ा हो सकता है ! हमने तो भय्या झुक जाना सीखा है । और फिर जिसे एक बार बड़ा मान लिया उसकी तो हम चार गालियाँ भी खा सकते हैं।"

पटवारी जी—"आपका और हमारा तो एक ही उद्देश्य है लाला छगन मगन इस जीवन का। एक ही साथ बैठकर तो दोनों ने बनाया था। उसी के सहारे इस जीवन-नौका को खे रहे हैं चौधरी धनीराम ! पचास साल बीत गये, जो रहे हैं वह भी बीत जायँगे आपकी कृपा से।"

इन लोगों के इस प्रकार दब जाने से चौधरी धनीराम का उबाल-खाता हुआ रक्त शांत हो गया। हृदय में उठता हुआ तूफानी बवंडर दब गया। फिर वही शुद्ध प्रेम और सहानुभूति की स्वच्छ धारा बह निकली। दूध पिया, प्रेमपूर्वक बातें कीं और अन्त में अपने उसी रौब-दाब के साथ विजय का उभार छाती में लेकर वहाँ से चल दिये।

लाला छगन मगन ने दिल से अपने बेटे मुन्नू और पटवारी की भूल को महसूस किया परन्तु कह नहीं सकते थे क्योंकि मुन्नू लाला से वह घबराते थे। चौधरी धनीराम के लाला छगन मगन के सिर पर एहसान थे। यह सही था कि उन एहसानों का बहुत कुछ मूल्य वह चुकता कर चुके थे परन्तु कुछ एहसान ऐसे भी होते हैं कि जिनका मूल्य कभी भी चुकता नहीं किया जा सकता। परन्तु मुन्नू लाला इस बात को नहीं मानते। उनका आज जितना बड़ा अपमान हुआ, क्या उसके साथ तराजू में रखकर भी कोई एहसान तौला जा सकता है ! यह अपमान उनके हर एहसान से भारी था।

पटवारी जी चौधरी धनीराम को चिकनी-चुपड़ी खुशामदाना बातें

करके फिर धार पर ले आने में बहुत दक्ष थे । वह तो शीलकुमारी का चौधरी धनीराम पर चौबीस घंटे अंकुश रहता था नहीं तो पुरानी आदतों को उनके चरित्र में फिर उभार खिला देना पटवारी जी के लिए बाएँ हाथ का खेल था। पटवारी का इसीलिए विरोध न तो चौधरी धनीराम से था और न चौधरी रणधीरसिंह जी से। उनकी आँखों की किरकी थी यह सिल्लो जिसने पटवारी जी की बनती-बनती हवेली बीच में रुक-वादी। इसीलिए वह चाहते थे कि यदि यह फिर किसी प्रकार एकबार आँख से निकल जाय तो उनकी हवेली पूरी हो जाय।

आसपास के यार दोस्त पटवारी जब उनसे मिलने आते थे और अपनी-अपनी कमाई का चिट्ठा उनके सामने रखते थे तो उन्हें मन मसोस कर रह जाना होता था। उन सबके बीच में उन्हें वह स्वयं ही सबसे अधिक मूर्ख जँचते थे। सरकार ने कितना अच्छा अवसर पटवारियों को धन कमाने का दिया था। जमींदारी समाप्त हो रही थी और ऐसे अव-सर पर किसी का भी नाम काश्त पर दर्ज कर देने से वह भूमि का स्वामी बन जाता था। अर्थात् पटवारी की कलम में जमींदारों और काश्तकारों का भाग्य सिमट कर आ गया था परन्तु इस कम्बख्त सिल्लो की बच्ची ने तो पटवारी जी का बना-बनाया आशाओं का दुर्ग खाक में मिला दिया। चौधरी रणधीरसिंह की जमींदारी का एक एक टुकड़ा प्राप्त करने वाला काश्तकार एक-एक हरा पत्ता पटवारी जी को भेंट करता और पट-वारी जी उस पर अहसान जतलाते हुए उसे उस भूमि का स्वामी बना देते। चौधरी रणधीरसिंह की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। वह तो गिरती हुई इमारत थी जिसे गिराने में और सहयोग देने से स्थानीय कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं की वाह वाही भी उन्हें और प्राप्त हो जाती।

पटवारी जी का यह स्वप्न साकार न हो सका। इस स्वप्न की जलन उन्हें अन्दर-ही-अन्दर झुलसाए दे रही थी और इस रहस्य का किसी पर उद्घाटन करके भी वह अपना कलेजा हलका नहीं कर सकते थे। मुन्नू लाला का सहारा पाकर कुछ कर गुजरने की लालसा उनके मन

में आई। दिलजले को एक और दिलजला मिल गया।

आज मुन्नू लाला के भी तन-बदन में आग लग रही थी। यह चमार का बच्चा अभी-अभी आकर कितनी खरी-खोटी सुना गया और फिर भी उसकी खुशामद ही करके जान बचाई गई, यह उनके लिए कुछ कम शर्म की बात नहीं थी। मुन्नू लाला की सिधाई और उनके आत्म-सम्मान का दम घुटने लगा। अब और अधिक चन्दनपुर में ठहरना उनके लिए कठिन हो गया। उन्होंने नौकर को बिस्तर बाँधने की आज्ञा दी और लाला छगन मगन के लाख रोकने पर भी वह न रुके।

पटवारी जी से एकांत में उनकी बहुत देर बातें हुईं, इसका किसी को कुछ पता नहीं। लाला छगन मगन को भी पता नहीं, परन्तु बातें बहुत घुलमिल कर हुईं। दोनों में खूब गहरी छनी। मुन्नू लाला का ताँगा आ गया और उस पर मुन्नू लाला के साथ पटवारी जी भी सवार हो गये। स्टेशन का रास्ता ठीक चौधरी रणधीरसिंह जी की छोटी हवेली के नीचे से होकर जाता था। जब ताँगा वहाँ पहुँचा तो चौंतरे की सफील के पास दो मूढ़ों पर चौधरी रणधीरसिंह और रानी शीलकुमारी बैठे थे। इन्हें देखकर ताँगा रुक गया और मुन्नू लाला ने हाथ जोड़ कर चौधरी साहब को प्रणाम किया।

शीलकुमारी—"अरे! मुन्नू लाला जा रहे हैं? हमने तो सुना था कि आप यहाँ एक सप्ताह ठहर रहे हैं। शायद मामलात की सर-गर्मी से एक दिन में ही परेशान हो उठे।"

मुन्नू लाला—"विचार तो अवश्य एक सप्ताह ठहरने का हुआ था, शीलादेवी परन्तु यकायक एक आवश्यक कार्य के याद आ जाने से तुरन्त चल देना पड़ा।"

शीलकुमारी—"परन्तु इस बार शहर जाकर चन्दनपुर को पहिले की तरह न भुला दीजियेगा। चंदनपुर का ऋण है आपके ऊपर और वह ऋण आपको ही अदा करना है।" यह कहकर शीला मुस्कराते हुए ली, "और वह चोरी वाली बात भी भूल जाने की नहीं है। यदि

आपने चन्दनपुर के साथ विश्वासघात किया तो आपको उसका दंड भुगतना होगा।"

मुन्नू लाला—"आपका दिया हुआ दण्ड भुगतने में मुझे आना-कानी नहीं होगी शीलकुमारी जी !" ऊपर से मुस्कराते हुए हृदय में अपार जलन लेकर मुन्नू लाला ने उत्तर दिया।

रणधीरसिंह—"शीलो की बात तनिक मजाक करने की है मुन्नू बेटा ! इस लिए तुम इसकी बात का बुरा न मान जाया करो। चंदनपुर तुम्हारा जन्मस्थान है और इसीलिए इसके उत्थान में सहयोग देना तुम्हारा धर्म है बेटा !"

मुन्नू लाला—"मैं अपने धर्म का पालन करने में पीछे नहीं रहूँगा ताया जी ! और शीलकुमारी के उपहासपूर्ण वाक्यों से तो मुझे बुरा मानने का कोई कारण ही नहीं है, उल्टी प्रसन्नता-सी होती है। थोड़ा दुःख इस बात का अवश्य है कि आज इन्हें दारोगा जी के मामले में कुछ गलतफहमी हो गई।"

शीलकुमारी–" वह तो कुछ भी नहीं है मुन्नू लाला ! उसकी आप किंचिन्त मात्र भी चिंता न करें। ऐसे दारोगा जी की मैं कोई चिंता नहीं करती। यदि आप लोगों ने कुछ कह भी दिया हो तो उसे भुला दीजिये और सत्य यह है कि यदि आप लोग अब झूठ बोलने की अपेक्षा उसे स्वीकार करलें तो हम एक-दूसरे के अधिक निकट आ सकते हैं। हम लोगों के पारस्परिक व्यवहारों में इस प्रकार की राजनैतिक चालों का प्रयोग करना घृणास्पद है।"

परन्तु मुन्नू लाला ने अपनी भूल को स्वीकार नहीं किया और उनके साथ में बैठे हुए पटवारी जी ने तो इस पर कई प्रकार से मुस्करा-मुस्करा कर मुँह बनाया। ट्रेन का समय हो रहा था इस लिए मुन्नू लाला ने विदा ली, परन्तु साथ ही साथ बहुत शीघ्र लौट आने का भी वायदा किया।

इनके चले जाने पर चौधरी रणधीर सिंह जी शीला से बोले, "बिटिया बड़ी ही स्पष्ट बातें करती हो।"

शीलकुमारी–"स्पष्ट बातों से तुरन्त भ्रम दूर हो जाता है ताया जी जी !"

चौधरी साहब—"यह मैं मानता हूं। अब क्या तुम बतला सकती हो कि इन दोनों व्यक्तियों में चन्दनपुर के लिए कौन व्यक्ति अधिक घातक है ?"

शीलकुमारी—"मेरे विचार से यह पटवारी ही अधिक धूर्त्त है।"

रणधीर सिंह—"मेरा भी यही विचार है।"

शीलकुमारी—"इनकी हवेली बनती-बनती रुकी पड़ी है। इन्हें उस हवेली को पूरा करने की चिंता है; चन्दनपुर के स्कूल की चिंता नहीं, औषधालय की चिंता नहीं !"

[६]

लाला छगन मगन अपने बेटे मुन्नू लाला के इस प्रकार पटवारी के चंगुल में फँस जाने से बहुत खिन्न थे। वह डर रहे थे कि कहीं ऐसा न हो कि इससे इनके और चौधरी साहब के याराने में फरक आजाय। सवेरे ही सवेरे चौधरी साहब के यहाँ पहुँचे तो चौधरी साहब ने कल की बात का जिक्र तक भी नहीं किया, परन्तु लाला छगन मगन का दिल भारी ही रहा था। इसी समय शीलकुमारी वहाँ आ पहुँची और उसके साथ चौधरी साहब जंगल की ओर घूमने निकल गये।

लाला छगन मगन को चलते समय शीला ने नमस्कार करते हुए इतना अवश्य कहा, "चचा! अब वास्तव में दुनिया का जंजाल छोड़ दो। आपके मुन्नू सब लायक हो गये। फिर आप क्यों रात दिन गाय के नीचे बछिया और बछिया के नीचे गाय करने के फिराक में लगे हुए हैं!"

"कहाँ बिटिया! तू तो व्यर्थ अपने इस चचा के पीछे हाथ धोकर पड़ी है। मैं करता ही क्या हूं। आमदनी अब कहाँ है? अब तो किसी तरह पेट पालना है बिटिया!" लाला छगन मगन दीन भाव से बोले।

"तुम्हारा पेट इस जीवन में नहीं पलेगा लाला छगन मगन!" मुस्कराते हुए चौधरी रणधीर सिंह जी बोले। "क्या रुपया चबाने का ठेका तुमने ही लिया है सेठ! परन्तु मैं नहीं समझता कि तुमने यह हविस की खोपड़ी कहाँ से पाई है?"

"दूर के ढोल सुहावने होते हैं चौधरी साहब! हमारी अन्दर की दशा कितनी पतली है यह आप क्या जानें?" दर्द भरे स्वर में लाला छगन मगन बोले।

"हालत मोटी होने का अधिकार आप बपौती के रूप में भगवान् के यहाँ से लाए हो चचा! और फिर हालत पतली!" इतना

कह कर शीला जोर से खिलखिला कर हँस पड़ी। फिर मुस्कराती हुई बोली, "घूमने चलिए ताया जी ! आज तो यहीं धूप निकल आई ! फार्म तक पहुँचते-पहुँचते सूर्य देवता सिर पर चढ़ आएँगे। और हाँ ! चलते समय चचा को एक सूचना भी देती चलूँ।"

"सूचना ! वह किस बात की बिटिया ?" आश्चर्य-चकित होकर लाला छगन मगन ने अपने गोल बिलाऊ जैसे नेत्र शीला के मुख पर फैला दिए।

चौधरी रणधीर सिंह जी ने भी शीला की ओर देखा।

"चन्दनपुर, जहाँ की मिट्टी में तुम पले और तुम्हारे मुन्नू लाला पले, जहाँ के लोगों की गाढ़े परिश्रम को खून पसीना एक करके पैदा की हुई कमाई में से चुंगी काट-काट कर तुम्हारा परिवार आज तक पलता आया है, जिस चंदनपुर ने तुम्हें सेठ की पदवी पर अलंकृत करके एक लम्बे युग तक पूजा है; उसी चंदनपुर के साथ तुम गद्दारी करना चाहते हो !" शीला ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"ऐसा मत कहो बिटिया ! ऐसा मत कहो। ऐसा मैंने कभी नहीं किया, ऐसा मैं कभी नहीं करूँगा।" लाला छगन मगन दुःखी मन से बोले।

"नहीं करोगे ! और कर रहे हो, बस यही तो परिस्थिति की गम्भीरता है चचा ! जरा जाकर देख लो, पटवारी जी की हवेली पर चिनाई लग रही है। चंदनपुर के स्कूल के लिए आपके पास पैसा नहीं है, आपकी हालत पतली है और पटवारी जी के मकान की दूसरी मंजिल खड़ी हो रही है।" नेत्रों में एक जहरीली सी किसी को छेद डालने वाली दृष्टि भरकर तनिक मस्तक पर बल खाती हुई सलवटें लेकर शीला ने कहा। "और यह ही नहीं, मैं आपको और सूचना देती हूँ कि कल रात मुन्नू लाला और दारोगा जी दोनों दिल्ली की सैर को गये हैं।" इतना कहकर शीला ने अपना मुँह लाला छगन मगन की ओर कर लिया।

चौधरी रणधीरसिंह पूरा रहस्य समझ गए। घूमने जाते-जाते वहीं

मूढ़े पर बैठते हुए बोले, "बेटी शीला ! एक गिलास पानी तो ले आओ अन्दर से। मेरा मन अभी-अभी न जाने कैसा हो गया। आज हम लोग घूमने नहीं चलेंगे।"

शीला पानी लेने अन्दर चली गई तो चौधरी रणधीरसिंह लाला छगन मगन की ओर घृणापूर्ण दृष्टि से देखते हुए बोले, "नीचता की पराकाष्ठा है यह लाला छगन मगन। इस दारोगा और तुम्हारे मुन्नू को हम कल के पिल्ले समझते हैं। यह पिल्ले इस बूढ़े शेर से क्यों झगड़ना चाहते हैं यह मैं नहीं समझ पाया। शीलो बिटिया को किसी ने आँख भरके देखा भी तो उसकी आँखें निकलवा लूँगा।"

"जरूर निकलवा लोगे चौधरी।" गिड़गिड़ाते हुए लाला छगन मगन ने कहा, "परन्तु मुझ पर तो आप नाहक ही इतना कोप दिखला रहे हैं। मुन्नू लाला की कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे इस गोलमाल का कुछ पता नहीं।" और इतना कहकर उन्होंने सचमुच ही चौधरी साहब के पैर छू लिए।

चौधरी साहब को विश्वास था कि लाला छगन मगन उनसे झूठ नहीं बोल सकते। उन्होंने सेठ को दोनों कंधों से पकड़कर उठाते हुए सामने मूढ़े पर बिठला दिया। इसी समय शीला पानी का गिलास लेकर आ गई। इस समय शीला के मुख पर वही सौम्यता थी, वही सौंदर्य की मीठी झलक और नयनों में वही मादक चितवन का बाँकापन। होठों पर मुस्कान नाच रही थी।

एक मूढ़े पर बराबर में शीला भी बैठ गई और मुस्कान-भरे रदों की पंक्ति को खोलकर बोली, "यह रुपया क्या लाला छगन मगन ने नहीं दिया मुन्नू लाला को ? मुन्नू लाला कितना रुपया साथ लेकर चंदनपुर आये थे, मुझे यह भी पता है, और चंदनपुर से जाते समय उनके पास कितना रुपया था मुझे यह भी पता है। पटवारी जी को कितना रुपया मेरे खिलाफ गाँव में तूफान मचाने और काश्तकारों के संगठन को छिन्न-भिन्न करने के लिए मिला, मुझे यह भी ज्ञात है; और कितना

रुपया रात शराब और सैर तफरी में बर्बाद किया गया होगा उसकी सूचना मेरे पास आज पहुँच जायगी।"

और वास्तव में लाला छगन मगन को मानना पड़ा कि उन्होंने मुन्नू लाला को रुपया दिया, परन्तु यह भी सच था कि मुन्नू लाला ने यह रुपया लाला छगन मगन से किस कार्य के लिए लिया इसकी सूचना उन्हें नहीं थी। यह सत्य शीला ने भी स्वीकार किया और चचा को किसी हद तक निर्दोष घोषित कर दिया, परन्तु साथ ही उसने यह भी कह दिया, "मुझे इससे कोई सम्बंध नहीं कि क्या हुआ, परन्तु इससे सम्बंध अवश्य है कि चंदनपुर का रुपया चंदनपुर में अवश्य लौट आना चाहिए।" और इतना कहकर वह बहुत गम्भीर हो गई।

लाला छगन मगन यहाँ से उठकर पटवारी की ओर से निकले तो वास्तव में वहाँ मकान पर मदद लग रही थी। पटवारी जी दूर से ही लाला छगन मगन को आते देखकर बड़े आदर-सत्कार से बोले, "आइये सेठ जी! हमारा धन्य भाग्य कि आज आप इस कुटिया पर पधारे।"

परन्तु लाला छगन मगन ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके हृदय में तो अग्नि प्रज्वलित हो रही थी यह सब देखकर। मन में कहा, 'बना दिया पाजी ने मुन्नू बेटे को मूर्ख। दो दिन के लिए यहाँ आया था, सो तूफान मचा कर चला गया। सारे गाँव वालों को शत्रु बनाकर यह पाजी ही एक रह गया था मित्र बनाने को। यह मीठी छुरी बनकर मेरे भोले-भाले मुन्नू के कलेजे में घुस गया।' मकान की दीवारों पर लगने वाली प्रत्येक ईंट लाला छगन मगन को लगा कि मानो उनके रक्त में भिगोकर उनकी छाती की पसलियों पर जमाई जा रही थी।

पटवारी ने पास आकर लाला छगन मगन का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, "यहीं पर खड़े रह गये? तनिक देखकर मशवरा दो, ठीक तो बन रहा है न! जीवन भर की कमाई मैंने तो इसी हवेली के हवाले कर दी।"

लाला छगन मगन अन्दर ही अन्दर जलते-भुनते पटवारी जी के

साथ हवेली देखने लगे पर उन्हें देखने में तनिक भी मजा नहीं आया। उन्हें इस समय वास्तव में दुःख हुआ कि यदि उन्होंने यह रुपया सच-मुच ही शीला के प्रथम बार कहने पर गाँव के लिए दे दिया होता तो क्यों उन्हें शीला की दृष्टि में काँटा बन जाना पड़ता।

इन्हीं विचारों में डूबे लाला छगन मगन अपनी दूकान की ओर चले गये। उनका चित्त आज बहुत दुःखी था, बहुत खिन्न था। वह निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि उन्हें क्या करना चाहिए। उनकी समझ में ही नहीं आया कि उनका वही मुन्नू लाला जो शहर में नित्य न जाने कितने आदमियों के कान काटता है, यहाँ गाँव में आकर इस प्रकार इस पट-वारी के बच्चे से कान कटवा गया! रुपया दिया होगा उसने इस सिल्लो की बच्ची धन्ना की छोकरी से बदला लेने के लिए और उससे बन रही है इस धूर्त की हवेली। इस पटवारी के बच्चे के पास भी वह जादू है जो दूसरों के सिर चढ़कर बोलता है। चलते-चलते भी मैंने खूब सम-झाया परन्तु वही किया जो करना चाहता था।

शीलकुमारी बड़ी ही सतर्कता से मुन्नू लाला की कार्यवाही का निरीक्षण कर रही थी। पटवारी के पास बैठने वाले जो व्यक्ति अपनी भूलों का अनुभव करके उससे मिल गये थे उन्हें उसने अपने गुप्तचर-विभाग में शामिल करके पटवारी जी के ही पास उनकी ड्यूटी लगा दी थी। इनके द्वारा रत्ती-रत्ती सूचना उसके पास पहुँचती रहती थी। दूसरे ही दिन उसे पता चला कि दारोगा जी एक दिन मुन्नू लाला के अतिथि रह कर थाने में लौट आये हैं। साथ ही आज मनिआर्डर द्वारा पटवारी जी को मुन्नू लाला के पास से १०००) मिला है। उसे यह भी सूचना मिली कि आज दारोगा जी ने थाने में लौटते ही किसी आवश्यक कार्य के लिए पटवारी जी को थाने में बुलाया है।

शीलकुमारी ने इस कार्यवाही पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और चौधरी रणधीरसिंह तथा अपने पिता धनीराम जी को सूचित किये बिना ही एक पत्र 'विजय' बाबू को लिख दिया। पत्र इस प्रकार था—

मेरे बाबू !

यह पत्र आपको आज चंदनपुर लिख रहा है, तुम्हारी शीला नहीं। आपका चंदनपुर आना एक महत्वपूर्ण घटना बन गया। यहाँ के वातावरण में उसने एक विचित्र प्रकार की उथल-पुथल और खलबली पैदा कर दी।

छगन मगन ने अपने मुन्नू लाला को, उन मुन्नू लाला को जिन्हें गाँव को तिलाञ्जलि दिये एक लम्बी अवधि व्यतीत हो चुकी थी, आपके आने की सूचना देकर गाँव बुलाया था। वह आये भी, परन्तु मंतव्य का स्पष्टीकरण न हो सका। आकांक्षाओं की सुलगने वाली ज्वाला को आपकी आश्वासन-पवन का झोंका प्राप्त न हुआ। उल्टा मेरे कुछ कटु शब्दों ने उन्हें खिजा कर अपमानित-तुल्य कर दिया। उन्हें अपमानित करना मेरा अभिप्राय नहीं था, परन्तु उनके ऐश्वर्य के चमत्कार से दब जाना भी मेरी प्रकृति के विरुद्ध था।

आपके लखनऊ चले जाने पर उन्होंने पटवारी जी से मित्रता की साँठ-गाँठ करके इलाके के दारोगा जी को गाँव में बुलवाया। दारोगा जी जिस लक्ष को लेकर यहाँ आये उसमें उन्हें सफलता न मिल सकी। इसके फलस्वरूप मुन्नू लाला की झुँझलाहट और बढ़ी और इस झुँझलाहट ने उन्हें यहाँ तक पागल बना दिया कि वह उसी दिन पटवारी जी को २०००) मेरे विरुद्ध यहाँ के देहात में कार्यवाहियाँ करने के लिए देकर शहर चले गये।

यहाँ से शहर जाते समय वह सीधे थाने में जाकर दारोगा जी से मिले और उन्हें भी अपने साथ शहर ले गये। शहर में एक दिन खूब ऐश की छान कर कल दारोगा जी थाने में लौटे हैं। आते ही उन्होंने पटवारी जी को बुलवाया है। स्थिति मुझे कुछ गम्भीर प्रतीत हो रही है, इसीलिए सूचनार्थ यह पत्र आपको लिख रही हूँ।

लखनपुर के स्कूल के लिए सरकारी सहायता का भी आप आश्वासन देकर गये थे। आशा है वह बात आपको विस्मरण नहीं हो गई

होगी।

लखनपुर का पत्र समाप्त करके अब अपना पत्र प्रारम्भ करती हूँ बाबू! प्रेम-पत्र जीवन में कभी नहीं लिखा, इसलिए इन अटपटे शब्दों को ही हृदय की पुकार मान कर स्नेह से स्वीकार करना।

नहीं आती तो याद उनकी, महीनों तक नहीं आती;
मगर जब याद आती है, तो अक्सर याद आती है।

आप आये और चले गये, यह आपको अधिकार था बाबू! परन्तु आप मेरी सात वर्ष की संचित विस्मृति मुझसे छीन ले गये यह अधिकार आपको किसने दिया? एक सरिता के दो किनारों को आपस में मिला देने की क्षमता एक मात्र सागर में ही है। परन्तु क्या उस सागर तक पहुँचते-पहुँचते सरिता में जल अवशेष रह सकेगा? कभी यह भी विचार किया आपने?

जब से आप गये हैं चित्त उद्भ्रांत है। पिता जी कहते हैं कि यह सम्बंध असम्भव है। आप भी इसे असम्भव मान सकते हैं, यह मैं विश्वास नहीं कर सकती। ताया जी और माता जी के क्या विचार होंगे यह स्पष्ट ही है। तब क्या सभी के विचारों से संघर्ष लेकर भी आप यह सब कुछ कर सकेंगे? दुनियाँ हमारे विषय में एक अपवाद खड़ा कर देगी, तूफान मचायेगी और यहाँ पटवारी जी ने तो कानाफूँसी भी प्रारम्भ कर दी है। मैं उसकी कोई चिंता नहीं करती, परन्तु आपको समाज में अपमानित कराकर मैं अपने किसी उद्देश्य की पूर्ति करने को उद्यत नहीं। मैं जानना चाहूँगी कि क्या आप भी इस सम्बंध को समाज में अपमानित होने का कारण मानते हैं?

हृदय अंधा है और वह बिना विचारे अपनी लहरों में बह रहा है। मस्तिष्क उसकी प्रगति पर बाँध लगाये बैठा है। परन्तु वह बाँध कब तक बने रह सकेंगे बाबू? इतना तीव्र खिंचाव और शक्तिशाली आकर्षण प्रदान करके आप इस प्रकार दूर जा बैठे कि मानो आपने कुछ किया ही नहीं। जीवन में उपहास का कोई स्थान ही नहीं, यह मैं नहीं कहती

परन्तु उसका समय निकल चुका । प्यासे को तरसाने की भी तो एक सीमा होती है। हृदय को विश्वास नहीं होता कि उस सीमा को उल्लंघन करने का आप साहस कर सकेंगे। हृदय के इस विचार को मस्तिष्क उसका दुस्साहस कहता है तो वह पीड़ा में भी मुस्कराने लगता है और मस्तिष्क से कहता है, 'भोले भय्या! तुम प्रेम की रीति क्या जानो! तुमने तो खरे को खरा और खोटे को खोटा कहना सीखा है। तुमने झुकना और सहन करना नहीं सीखा । तुम जीवन को सुख दे सकते हो, सरसता प्रदान नहीं कर सकते। जले हुए फफोलों पर शीतल कर का स्पर्श नहीं कर सकते।' और मानो मैं अचेत से सचेत हो उठती हूँ।

अब जीवन का अधूरापन सम्पूर्ण होना चाहता है। इसके लिए आपका सहयोग चाहिए! आत्मिक सहयोग ने आज तक साथ दिया परन्तु तुम्हारे दर्शनों ने नेत्रों में कुछ ऐसी प्यास भर दी कि अब वह प्रतिक्षण उसी के लिए तरसते रहते हैं। प्रतीक्षा की भी तो कोई सीमा होती है। असीम प्रेम और असीम प्रतीक्षा के हवाले इस जीवन को करके मुझे योगिनी बनाने में आपको क्या मिल रहा है? मैं तो असीम में असीम को बन्दी बनाने का स्वप्न देख रही हूँ। उसी का रंगीन और सुनहला चित्र मेरे नेत्रों की पुतलियों में समाया हुआ है। मैं तो चाहती हूँ कि मेरे उपवन का मृग स्वयं मेरे प्रेम पाश में आकर बन्दी बन जाय।

मैं चाहती हूँ कि हमारा यह प्रेम समाज के बन्धनों को चुनौती दे, समाज के पौंगापंथियों को ललकारे, जाति-पांति के ढकोसलों को छिन्न-भिन्न कर डाले और चन्दनपुर निवासियों को दिखला दे कि यह दो आत्माओं का मिलन है, दो जीवन का प्रवाह है; इसे रोका नहीं जा सकता इसे सीमित नहीं किया जा सकता। परन्तु·······

जिससे हृदय सदा समीप है
वही दूर रहता है।

बाबू! अब अकेले जीवन-पथ पर चलने को जी नहीं चाहता।

न तो आपत्ति का कोई सहारा है और न ही अब जीवन की जटिल समस्याओं को सुनाने और दिल हलका कर लेने का ही कोई बहाना है। आज जीवन कुछ ऐसा लगता है जैसे अपूर्ण हो, शुष्क हो, नीरस हो, निर्जीव हो, प्रवाह-विहीन हो, प्रगति-विहीन हो, मूक हो, अस्थिर और अनिश्चित हो, कुछ खोया-खोया, कुछ भूला-भूला, कुछ भटका-भटका सा मेरा मन न जाने क्या-क्या मुझसे कहता है। पथ भूले राही की तरह मैं उसकी बातें व्योम से आने वाली अनजानी ध्वनियों के समान सुनती हूँ और आश्रय-विहीन, आधार-विहीन, सुरक्षा-विहीन-सी विश्व के घने जंगल में अपने को अकेली पाकर काँप उठती हूँ, थरथरा उठती हूँ। परन्तु तुरन्त ही बाबू ! मेरी हृदय-वीणा के मौन तारों पर आकर कुछ अनजानी-सी स्मृतियाँ संगीत के स्वरों का नृत्य प्रारम्भ कर देती हैं और जंगल में मंगल हो उठता है। एक सहारा मिल जाता है इस भटकती हुई आत्मा को। परन्तु यह सब अस्थिर है, कोई स्थायित्व नहीं है इसमें। आपका पावनस्पर्श ही इसे स्थायित्व प्रदान कर सकेगा बाबू ! विलम्ब न करो। जो कार्य कल करना है उसे आज ही क्यों न कर लिया जाय !

इस संसार के पश्चात् स्वर्ग की कल्पना करने वाली स्वप्न-लोक की परी मैं नहीं हूँ बाबू ! मैं तो जीवन को इसी संसार के लिए समझती हूँ। संकुचित विचार-धारा ही चाहे तुम इसे समझो, परन्तु मैं इसे ही जीवन में सत्य मानकर चलती हूँ। इसलिए जीवन के जो क्षण, जो दिन, जो मास, जो वर्ष हम खो रहे हैं वह निश्चय ही जीवन-निधि का कोष हम रिक्त कर रहे हैं। इस रिक्त होते हुए कोष को रोकना और फिर सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा इसे सुख और सुषमा से भर देना आपकी 'हाँ' और 'नाँ' में निहित है। आप हाँ करदें तो यह सुख और सुषमा हमारे जीवन का बाँध तोड़कर संसार के ऊजड़ और बियावान खंडहरों को पुष्पित उद्यान बनाते चले जायँ। यही मेरी हार्दिक कामना है।

'हाँ' आपने सर्वदा ही कही है बाबू ! और आपके शब्द मेरे सामने वेद-वाक्य से कम नहीं। मैं उन्हें पत्थर पर खिंची रेखा के समान मानती हूँ, परन्तु अब देर हो रही है। जीवन का संचित स्नेह संघर्ष के दीपक में जल-जलकर समाप्त होना चाहता है। आपका सहयोग पाये बिना जीवन में नवीन स्नेह का नव-संचार होना कठिन है। मैं एक वल्लरी हूँ जिसके नेत्र आपने आकाश पर ताकने के लिए चिबुक पर सहारा देकर ऊपर तो उठा दिये परन्तु उस वल्लरी को सहारा दिये बिना क्या कभी यह सम्भव हो सकेगा ? जिसे एक बार आकाश पर बैठने का स्वप्न आपने दिखलाया, क्या उसी को अब भूमि पर पड़े-पड़े ताकते देखकर आपको दया नहीं आती बाबू !

संघर्ष जीवन की शक्ति अवश्य है, परन्तु संघर्ष जीवन नहीं हो सकता। व्यक्ति संसार में संघर्ष के लिए नहीं आता जीने के लिए आता है और इस जीने के लिए उसे संघर्ष करना होता है। परन्तु आपने तो अपना और मेरा जीवन मानो संघर्ष के ही लिए चुना है। इससे बाहर निकल कर आप कुछ विचार करना ही नहीं चाहते। समस्याएँ मैं जानती हूँ बहुत हैं, परन्तु इनका क्या कभी अंत होगा ? समस्या में से ही तो समस्याओं का जन्म होता है और यह होता ही रहेगा। क्या आपके विचार से हम लोग विवाह के पश्चात् इन समस्याओं से संघर्ष नहीं ले सकेंगे ? मेरा ऐसा विचार नहीं है। जीवन की वास्तविक समस्याओं का उद्घाटन विवाह के पश्चात् ही व्यक्ति के सम्मुख आता है। आज तक जिन बातों को हम सुनते आये हैं, जब तक उन्हें प्रत्यक्ष-रूप में नहीं देखेंगे तब तक तो हमारा जीवन अपूर्ण ही है बाबू ! इस अपूर्णता में पूर्णता लाने के प्रयास को मैं जीवन का जीवन के प्रति कर्त्तव्य मानती हूँ, जीवन का जीवन के रहस्यों में घुस जाना मानती हूँ।

अंत में अपने जीवन की उस कमी, अपने हृदय की उस रिक्तता, अपने मन के उस हल्केपन को आपसे न छुपाते हुए निवेदन करती हूँ

कि यह मेरा उतावलापन और कुछ नहीं है, प्यासी आत्मा की पुकार है। तीन वर्ष की अवस्था में माता जी का स्वर्गवास हो गया था। उसके पश्चात् आपका ही सहारा पाकर एक लम्बे काल तक जीवन-पथ पर बढ़ती चली आई। प्रारम्भ से ही संघर्ष और आपत्तियों को सहन करने का आपने बढ़ावा दिया। फलस्वरूप जीवन ही संघर्ष बन गया। मुझे यहाँ संघर्ष करने के लिए अकेली छोड़कर आप उधर न जाने कितने संघर्षों में जा जूझे। अब क्या जीवन का यही अंत होना है कि एकांत पथ के राही बनकर दोनों जीवनपर्यन्त इसी प्रकार जूझते रहें। यदि आपके आनंद और सुख की कल्पना इसी में है तो मैं भी इसी को जीवन का ध्येय मानकर जीवन में घटाने का प्रयास करूँगी।

पत्र में अनजाने ही कोई भूल बन पड़ी हो तो क्षमा करना।

आपकी

शीला

[१०]

चंदनपुर के वातावरण में एक सनसनी थी, एक खलबली थी और किसानों ने अभी तक उस दिन दारोगा जी के गाँव में इस प्रकार आने को भुलाया नहीं था। लाला छगन मगन की दशा गाँव में हत्यारे की भाँति हो रही थी, मानो अनजाने में उनके हाथ से किसी गौ की हत्या हो गई हो। किसी के सामने मुँह लेकर बोलते उन्हें लज्जा आती थी और उनकी आत्मा उन्हें स्वयं भी अन्दर ही अन्दर ग्लानि का पात्र कहकर दबोच रही थी। फिर इधर पटवारी की हरकतों ने तो गाँव के वातावरण में एक विचित्र प्रकार का जोश पैदा कर दिया था।

पटवारी के साथी गाँव के वही छटे हुए गुण्डे थे कि जो कभी चौधरी धनीराम की लाठीबंद सेना के सालार थे। कभी जीवन में इन लोगों ने कोई काम नहीं किया। गाँव कमाता था और यह लोग खाते थे, गाँव महनत करता था और यह ऐश की छानते थे। इधर जबसे चौधरी रणधीर सिंह का रुख बदला तो इन लोगों ने भी अपना पासा बदल दिया। प्रारम्भ में पंचायतों में दखल देने का प्रयास किया परन्तु वह काँचली अधिक दिन साथ न दे सकी। फिर पटवारी जी के साथ गुट-बन्दी करके गाँव वालों में फूट पैदा करने का प्रयास किया परन्तु इनकी इस खेती पर शीलकुमारी ने पाला डाल दिया। इसीलिए इधर कुछ दिन से यह बहुत निराश थे।

मुन्नू लाला गाँव में आये तो इन लोगों ने अपना जाल इन महाशय के इर्द गिर्द फैलाया और इसमें इन्हें सफलता भी मिली। कुछ-न-कुछ रुपया उनसे ऐंठ ही लिया गया परन्तु रुपया सब लगा पटवारी जी के ही हाथ। इधर पटवारी जी भी काफी सयाने हो चले थे। उन्होंने जीवन में कुछ काम पूर्ण करने का निश्चय किया था और उन्हीं में से एक

प्रधान काम इस हवेली को पूरा करना था। गाँव के वातावरण को देखते हुए आगामी भविष्य में अधिक धन प्राप्त होने की कोई विशेष आशा न देखकर वे जो कुछ भी रुपया मिला उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति समझकर हवेली के बनाने में जुट गये।

मुन्नू लाला ने यह रुपया किस कार्य के लिए दिया था, यह उनके लिए गौण हो गया। दारोगा जी ने उन्हें बुलाकर गाँव की दशा के विषय में पूछा तो उन्हें खूब उलटा-सीधा सुझा दिया। सोचा कि यदि दारोगा जी की झड़ें किसी प्रकार इस सिल्लो की बच्ची से इलझ गई तो बस कार्य सिद्ध हो जायगा। गाँव में आने पर पार्टी के साथियों ने पटवारी जी से कुछ भेद लेने का प्रयास किया तो उन्हें अंट की शंट बातें बतलादीं। एक साथी ने क्रोध में भर कर कहा, "देखिये पटवारी जी यह मक्खी सबकी आँखों के सामने निगलने का प्रयत्न न कीजिये।"

पटवारी जी—"क्या कह रहे हो भय्या! तुम मक्खी निगलने की बात कह रहे हो; यहाँ तो और उल्टी गरीब-मार हो रही है। मुन्नू-लाला शहर में जाकर बैठ गये और यहाँ खूँद खचेड़ मेरी हो रही है। अभी-अभी देखा नहीं आपने कि थाने से ही तो आ रहा हूँ। तुम्हारी पटवारिन का तमाम जेवर बेचकर सोचा था कि यह हवेली बना लूँगा परन्तु अब तो दीखता है कि यह टके भी दारोगा जी के ही हवाले करने पड़ेंगे। इन अफसर लोगों को तो बस छेड़ देना ही बड़ा पाप है भय्या!"

दूसरा—"और वह जो परसों मनिआर्डर आया था वह शायद पटवारिन जी के भय्या जी ने भेजा था! क्यों पटवारी जी!"

पटवारी जी—"वह! वह तो भय्या मुन्नू लाला चलते समय मुझसे उधार ले गये थे। अब तुम लोगों से यह कच्ची बातें क्या कहता भला? लेकिन है पूरे साह का बेटा। जाते ही भेज दिया बेचारे ने।"

पहिला—"ठीक है पटवारी जी! मुन्नू लाला को भी यहाँ एक

आप ही साह मिले थे। उनके पिता लाला छगन मगन मर चुके, चौधरी रणधीरसिंह के यहाँ भोजन का भी घाटा है, बस आप ही के पास से वह इतना रुपया पा सकते थे !"

यह बातें चल ही रही थीं कि गाँव के काश्तकारों का एक रेला आकर पटवारी जी के मकान पर इकट्ठा हो गया। लोगों में अथाह जोश था और वह सबके सब लाठियों से लैस थे। उनमें से एक ने कड़क कर कहा, "क्यों बे पटवारी के बच्चे ! तूने फिर हरामजदगी पर कमर कस ली है। तुझे एक बार हम क्षमा कर चुके हैं। तू और तेरा खानदान आज तक हमारे खून-पसीने की कमाई पर ऐश करता चला आया है। तूने आज तक हम लोगों को मूर्ख बना-बना कर आपस में लड़ाया और बर्बाद किया है। तूने भाई से भाई का खून कराया है, तूने पुत्र से पिता को मुकदमा करने के लिए बाध्य किया है, तूने पड़ौसी को पड़ौसी से भिड़वाया है। गाँव की एक चक भूमि को तूने टुकड़े-टुकड़े करा के आपसी फूट का बीज बोकर नाकारा और कम उपजाऊ बना दिया। तूने चन्दनपुर को निर्धन बना दिया। बता अब तू और क्या चाहता है ?"

"बता अब तू क्या चाहता है नीच ? हम लोगों पर तेरी सब बदमाशियाँ खुल चुकी हैं। तू मुन्नू लाला से रुपया लेकर उस रुपये से हम लोगों को उल्लू बनाना चाहता है। तेरे उस रुपये के लालच में यह तेरे पास बैठने वाले चन्द गाँव के गुण्डे ही फँस सकते है। हमें अपनी मेहनत और मजदूरी पर विश्वास है। हमें यह हराम का पैसा नहीं चाहिए।" दूसरे ने कहा।

"तुम इस पैसे से अपनी हवेली बनाओ, दरोगा जी की दावतें करो, अपने यारों को खिलाओ और फिर मुन्नू लाला से अपना दूसरे महीने का वेतन माँग लो, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं। परन्तु याद रखो कि यदि तुमने............"

वह आगे कुछ कहने को ही थे कि इतने में पीछे से शीलकुमारी

ने गम्भीरतापूर्वक भीड़ के अन्दर घुसते हुए आगे पहुँच कर पूछा, "यह सब भीड़ किसलिए है?"

"यह इस नीच को इसकी कार्यवाहियों के लिए चेतावनी देने के लिए है शीला बहिन! हमने प्रण किया है कि हम चन्दनपुर में जहरीला वातावरण पैदा करने वाले कीड़ों को नहीं पनपने देंगे। इन प्लेग के कीड़ों का सर्वनाश करना ही होगा।" एक नौजवान ने आगे बढ़कर कहा।

पटवारी जी का दम खुश्क हो रहा था। उन्हें भय था कि कहीं कोई उन पर हाथ न छोड़ बैठे। उनके मस्तक से पसीना चू रहा था।

तभी उनके एक साथी ने आगे बढ़ते हुए कहा, "सुना कुछ पटवारी जी आपने! आप तो यारों के भी साथ दगाबाजी करना चाहते हैं!"

पटवारी जी—"अरे भाई कैसी दगाबाजी? आप लोग तो सबके सब मेरे ही सिर होने की कसमें खाकर घर से चले हैं। आज तक मैं और मेरा खान्दान चन्दनपुर की सेवा में मर मिटे और उस सेवा का आज आप लोग मुझे यह पुरस्कार देने चले हैं। आपको अधिकार है, चाहे जो कुछ भी क्यों न कहें, परन्तु सचाई तो ईश्वर देखता है।" और इतना कहकर उन्होंने अपने नेत्र मींचकर दोनों हाथ जोड़ते हुए मुख आकाश की ओर कर लिया।

शीलकुमारी के मुख-मंडल पर पटवारी जी की यह मुखाकृति देख कर मुस्कान की रेखा दौड़ गई। हृदय में विजय के भाव तरंगित हो उठे और वह सरल स्वाभाविकता से बोली, "भाइयो! आप लोग अपने काम पर चलें। यहाँ व्यर्थ समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं। पटवारी जी को मैं खूब पहिचानती हूँ। कुत्ते की पूँछ बारह वर्ष नलकी में रखने पर भी जब बाहर निकाली जायगी तो तिरछी ही निकलेगी। इस प्रकार की पूँछों को समय आने पर समाज स्वयं काट कर फेंक देगा। इन लोगों को अपनी राहें बदलनी होंगी, इसमें कोई संदेह नहीं, परन्तु जब तक इनके मुख में दांत हैं और उनके अन्दर विषकी पोटली

रखी हुई है तब तक बेचारे यह कर भी क्या सकते हैं ? अपने स्वभाव से लाचार हैं। फिर बाप दादों के सिखलाये हुए पेशे को चौधरी रण-धीरसिंह जी की तरह ठुकरा देने वाले तो बिरले ही शेर के बच्चे इस संसार में जन्म लेकर आते हैं।

पटवारी जी जैसे विषैले कीड़ों से मैं यह नहीं कहती कि आप लोगों को सतर्क नहीं रहना चाहिए, परन्तु इन कीड़ों का विष आप लोगों को तभी हानि पहुँचा सकता है जब आपमें पारस्परिक सद्भावना न हो, प्रेम न हो, एक की कठिनाई को दूसरा अपनी कठिनाई न समझे, एक की विपत्ति को दूसरा अपनी विपत्ति न समझे, एक की भूख को दूसरा अपनी भूख न समझे। आप लोगों का पारस्परिक प्रेम इनके विष को सोखनें के लिए वह जहर-मोहरा है कि जहाँ यह विष कारगर नहीं हो सकता।"

इतना कहकर शीलकुमारी गाँव के सब काश्तकारों को साथ लेकर जंगल की ओर चली गई और पटवारी जी वहाँ अपने दो-चार साथियों के साथ अकेले खड़े रह गये। इसी समय सामने से गुजरते हुए लाला छगन मगन जो इधर आये तो पटवारी जी जली लकड़ी की तरह आँखों की त्योरी बदलते हुए उनके सामने पहुँचकर बोले, "मैंने कहा, सुना है कुछ आपने ! मैं तो बर्बाद हो गया आपके मुन्नू लाला के लिए। सारा गाँव मेरा शत्रु हो गया। और तो और, यह रात दिन के यार लोग भी मुझे गलत समझने लगे।" और इतना कहकर पटवारी जी ने बड़े ही दीन भाव से अपने साथियों की ओर देखा।

लाला छगन मगन अन्दर ही अन्दर जल-भुनकर ढेरी हो गये, परन्तु यहाँ इन लुच्चे-लफंगों के बीच एक शब्द भी कहना उन्होंने उचित नहीं समझा और वह पटवारी जी की तरफ उसी प्रकार घूरते हुए आगे को निकल गये जिस प्रकार कसाई को देखकर गाय धीरे से बचकर भागती है। इनके चले जाने पर पटवारी जी फिर अपने साथियों में पहुँच कर बड़े प्रेम से बोले, "मित्रो ! आज आप लोगों का भी अपने

साथी के प्रति यह व्यवहार देखकर मेरे हृदय को जो ठेस लगी उसकी पीड़ा का मैं तुम्हारे सामने वर्णन नहीं कर सकता, परन्तु मेरी बात की सचाई अभी-अभी लाला छुगन मगन के चुप रह जाने से तुम लोग जान ही गये होगे। अब तुम्हीं समझ लो कि सुन्नू लाला के लिए यह लाला छुगन मगन मर गये थे या जी रहे थे। इस कंजूस ने तो आजतक पैसे को दाँतों से ही पकड़ा है।

लेकिन मैं यारों से दूर नहीं। आप लोगों की सेवा में तो मुझे अपना सब कुछ लुटाते हुए भी हर्ष ही होगा।"

बस दावत का प्रस्ताव पास हो गया और यारों ने भी यकीन कर लिया कि वास्तव में सुन्नू लाला ही पटवारी जी को चकमा दे गये। गाँव के रहने वाले बेचारे सीधे-साधे पटवारी जी सुन्नू लाला के धोखे में आ गये। दाव फेंका था कुछ रुपया ऐंठने के लिए परन्तु उल्टा कुछ अपनी ही गाँठ का गँवाना पड़ गया। पटवारी जी की दर्द-भरी आहों में यारों ने अपने-अपने स्वर मिला दिये और ठर्रा का दौर आपस में चल गया। एक बार यार लोग मस्ती में नाच उठे और सब ने मिलकर बोतल को बीच में रखते हुए कसम खाई कि जब तक वह लोग अपनी शक्ति के सूत्र को इस चमार की बच्ची के हाथों से छीन कर चन्दनपुर की मूढ जनता को फिर से मदारी के बन्दरों की तरह नचाने में सफल नहीं हो जायँगे तब तक चैन से नहीं बैठेंगे। अपनी खोई हुई शक्ति को उन्हें हासिल करना ही है।

उधर लाला छुगन मगन यहाँ से बच कर सीधे चौधरी रणधीर सिंह जी की छोटी हवेली पर पहुँचे तो चौधरी साहब अपने उसी ठाट बाट और रौब-दाब के साथ एक मूढे पर पेचवानी की नै अपनी उँगलियों में दबाये बैठे थे। चौधरी साहब की मूछों पर वही तनाव था, दाढ़ी में वही ऐंठ था, भवों पर वही बाँकापन था, मुख पर वही मुस्कान और मस्तक पर वही तेज। वही सीने का उभार और उसी प्रकार एक पैर के घुटने पर दूसरा पैर रखा हुआ था। लाला छुगन मगन

आये तो उनका चौधरी साहब ने खड़े होकर स्वागत किया और पास में मूढ़े पर बिठलाते हुए बोले, "सेठ ! कहाँ रहे तीन दिन से ? तालाबों में जाल डलवा दिये तुम्हारी खोज में। क्या मुन्नू लाला के साथ तुम भी शहर चले गये थे ?"

लाला छगन मगन—"कहीं भी नहीं गया चौधरी साहब ! अपनी किस्मत को रो रहा था अकेले में बैठा-बैठा। क्या मुँह लेकर आता आपके पास। मुन्नू लाला ने जो किया, उसके पश्चात् क्या आपके सामने आता ! शीला बिटिया भी तुनकमिजाज ठहरी। खामखा उसके मुँह लगकर आपस में तनातनी कर ली।"

चौधरी साहब—"परन्तु लाला छगन मगन ! इन बच्चों की बातों में आकर हम बड़ों को परेशान होना चाहिए, यह मेरी समझ में नहीं आया। मुन्नू लाला और शीला को आपस में ताकत आजमाने दो। तुम और हम बैठकर तमाशा देखें, बस हम तो यही सलाह देते हैं आपको।"

परन्तु चौधरी साहब की इस नेक सलाह से लाला छगन मगन के चित्त की उद्विग्नता दूर न हो सकी। उनका घर लुट रहा था, उनकी जीवन भर की कमाई उनकी आँखों के सामने वह लुच्चा पटवारी उनके भोले-भाले मुन्नू लाला से ठग कर अपना उल्लू सीधा करके खा रहा था। इस शीला की बच्ची ने उन्हें आस-पास के देहात में दयावान् दयानिधान सेठ भामाशाह के कलयुगी अवतार इत्यादि विशेषणों से वंचित करके गरीब काश्तकारों का रक्त पीने वाली जोंक और कंजूस मक्खीचूस सूदखोर इत्यादि विशेषणों से आभूषित कर दिया था। जो लोग पहिले सेठजी सेठजी कहकर उनके तलवे सहलाते हुए आते थे, अब आते ही काली-पीली आँखें दिखलाते थे। उनके परिवार की सदियों की संचित निधि इस प्रकार उनकी आँखों के सामने काफूर की भांति उड़ती चली जा रही थी और वह उसे रोकने का प्रयास करने में भी असमर्थ थे। वह मौन थे पत्थर की शिला के समान और माथे पर हाथ रख कर इस प्रकार बैठ गये मानो कहीं से कोई मुर्दनी का समाचार लेकर आये थे।

और उनके विचार से यह वास्तव में मुर्दनी से किसी प्रकार कम नहीं था। उनकी मान-मर्यादा नष्ट हो रही थी, उनकी जड़ें हिल रही थीं, उनकी बुनियादें खोखली पड़ गई थीं, उनकी दीवारें रेह खा चुकी थीं, उनका चूना मिट्टी हो चुका था। वह क्या करें उसे पुख्ता बनाने के लिए, यह कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

लाला छगन मगन ऊपर से ढीले-ढाले अवश्य थे और विचारों में लचर भी बहुत थे, परन्तु जहाँ तक इनके सिद्धांतों का सवाल था वह अपने सामने रणधीरसिंह को कुछ नहीं समझते थे। उनके विचार से रणधीरसिंह अपने बुनियादी सिद्धांतों को छोड़कर जीवन में हार मान चुके थे। समय की बदलती हुई रविश में वह जाना बहादुरों का काम नहीं, बल्कि समय की बहती हुई रवानी को रोक देने में ही उसकी शान है। लाला छगन मगन अपनी शान के लिए क्या कुछ नहीं कर सकते, परन्तु साथ ही उन्हें ध्यान आया कि नहीं, यह विचार उनका गलत था। इस प्रकार के विचारों का पोषण तो आज तक चौधरी साहब ने ही किया है और उन्होंने सर्वदा इसके विरुद्ध वही मत अपनाया है जिसमें चार पैसे का लाभ हो, कुछ बचे।

चौधरी साहब—"मैंने कहा किस सोच में पड़े हो लाला छगन मगन! यह दुनियाँ का सब झूठा झमेला है। हमारी ओर नहीं तो जरा अपने बेटे विजय भय्या की ओर ही देखो। मैंने सारी जमीदारी खत्म कर दी और उसने मेरे पैर चूम लिए। कैसे ऊँचे विचार हैं उसके? और फिर हों भी क्यों नहीं? बड़े घराने का बच्चा है। ऊँची तालीम पाई है। खुदगर्जी उसे छू तक नहीं गई।"

लाला छगन मगन—"बस रहने दीजिए चौधरी साहब इन बातों को। अब तो फिसल पड़े की हर गंगा है। बहती सरिता में हाथ धोये हैं आपने तो। क्या हमसे छुपी हुई है यह रामकहानी। जमींदारी खत्म हो रही थी, आपने सोचा यश ही ले लो इस समय। वरना किसका लेना और किसका देना? हमने वह दिन भी देखा है जब काश्तकार

लोग एक-एक आने के लिए गिड़गिड़ाते थे और आपका कारिन्दा उस एक आने को कोड़े मार-मार कर वसूल करता था।"

लाला छगन मगन की बात सच्ची थी, इसलिए चौधरी रणधीरसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया। आज उन्होंने वास्तव में महसूस किया कि उन्होंने वह पाप किया है कि जिसका प्रायश्चित्त आज वह अपनी तमाम भूमि काश्तकारों को मुफ्त छोड़ देने पर भी नहीं कर सकते। परन्तु उन्हें तुरन्त ही ध्यान आया कि यह लाला का बच्चा बातों ही बातों में चोट कर गया और वह तुरन्त ही तिलमिला कर बोले, "लाला छगन मगन! वह जो कुछ भी किया मैंने किया, विजय भय्या ने नहीं। मैं तुमसे विजय की बात कर रहा हूँ जिसने मुझसे छुपा कर अपने निजी खर्च से काश्तकारों के लगान अदा किये, जिसने मुझे रुला कर न जाने कितनों को हँसाया, जिसने अपने को मिटाकर जाने कितनों को बनाया। क्या उसके लिए भी तुम्हारे पास कुछ कहने को है?"

और वास्तव में 'विजय' भय्या के लिए कुछ कहने को लाला छगन मगन के पास कुछ नहीं था। उनकी गर्दन शर्म से नीचे को गिर गई। चौधरी साहब अपने बेटे की बड़ाई करके आज गर्व से मस्तक ऊँचा किये सीना उभार कर बैठे थे और छगन मगन का सिर ऊपर को नहीं उठ रहा था। वह चौधरी साहब से आँखें नहीं मिला सकते थे।

इसी समय सामने से शीलकुमारी आगई और उसने तायाजी तथा चचा साहब को आदर सत्कार के साथ नमस्कार किया। शीलकुमारी को देख कर दीनभाव से लाला छगन मगन ने उसके मुख पर देखा तो वह मुस्करा रही थी। मानो उसने मौन भाषा में कह दिया, 'चचा! मैं जानती हूँ कि तुम्हारा इस सब झमेलेबाजी में कोई हाथ नहीं परन्तु पता तुम्हें सब कुछ है। तुम न बतलाना चाहो, न बतलाओ। मालूम मैं सब कुछ कर लूँगी। और अन्त में तुम्हें मुँह की खानी होगी। तुम्हारे मुन्नू लाला का जादू मेरे ऊपर चलने वाला नहीं।'

शीलकुमारी यहाँ अधिक देर न ठहरी। अन्दर चली गई।

[११]

'विजय' बाबू किसी आवश्यक कार्य पर जाने के लिए तय्यार बैठे थे कि इतने में चपरासी ने डाक लाकर सामने मेज पर रख दी। डाक में शीलकुमारी के पत्र पर उनकी दृष्टि गई और वह सात वर्ष पुराना लेख उनकी आँखों की पुतलियों में सजीव रूप से चित्रित हो उठा। सब डाक एक ओर रख कर उसे खोला और खोलकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। पत्र कई बार आद्योपांत पढ़ने के पश्चात् उन्होंने टेलीफोन उठाया और उसे किसी जगह मिलाते हुए बोले, "अभी-अभी आपके पास आ ही रहा था परन्तु एक आवश्यक कार्य के बीच में आ जाने के कारण मैं आ न सकूँगा। कृपया इस कार्य को किसी अन्य दिन के लिए स्थगित कर दें।" और फिर उसी समय कलम दवात लेकर बैठ गये। पत्र लिख रहे थे। कभी उनकी मुख-मुद्रा कुछ गम्भीर हो उठती थी, कभी सीने में तनाव आ जाता था, कभी मुख-मंडल पर मुस्कान नाच उठती थी, कभी नेत्र में पानी डबडबा आता था और कभी वह चिंतित-से होकर एक ओर कुर्सी पर बैठ जाते थे, कलम रुक जाती थी और माथे की सलवटें धीरे-धीरे सरल स्वभाव में विलीन होने लगती थीं। कलम फिर चल पड़ती थी। पत्र इस प्रकार था:—

कर्त्तव्य की देवि शीले!

नहीं आती तो याद उनकी महीनों तक नहीं आती,
मगर जब याद आती है तो अक्सर याद आती है।

कितनी प्यारी पंक्तियाँ हैं यह दोनों! मानों प्रेमी के हृदय का सार भर दिया है कवि ने इनमें। शीले! तुम देवी हो और तुम्हें प्राप्त करने का मैंने जब-जब भी प्रयास किया, परिस्थितयों ने मुझे तुम्हारे अयोग्य समझ कर तुमसे दूर धकेल दिया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं

कि मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मैंने योग्य बनने का प्रयास किया और आज भी मैं वही कर रहा हूँ। जीवन का संघर्ष हम दोनों के देह को एक दूसरे से पृथक् रखने में सफल अवश्य रहा परन्तु हमारे आत्मिक मिलन में बाधा उपस्थित करना किसी की सामर्थ्य नहीं।

तुम्हारे पत्र में मैंने तुम्हारे और चन्दनपुर दोनों के दर्शन किये और अपने कर्त्तव्य को पहिचाना। तुम शक्ति हो शीले ! तुम पर विजय प्राप्त करना कोई साधारण कार्य नहीं। तुम्हारी आत्मिक शक्ति और तुम्हारे कर्त्तव्य की दृढ़ता तथा उद्देश्य की महानता ही वह बल है जिसे पटवारी, लाला मुन्नू और दारोगा जैसे हजारों कीड़े मिलकर भी टस से मस नहीं कर सकते। फिर भी सावधानी से काम लेना और हर आवश्यक सूचना से मुझे अवगत करना। आवश्यक कार्यवाही मैं कर रहा हूँ। तुम विश्वास रखो कि तुमने चन्दनपुर का जो नव-निर्माण किया है उसे शासनसत्ता की ओर से हर प्रकार का सहयोग मिलेगा। दुर्भाग्यवश यदि किसी भी सरकारी कर्मचारी ने इस कार्य में कोई विघ्न-बाधा उपस्थित करने का प्रयत्न किया तो उसे उचित दण्ड भुगतना होगा।

शीले रानी ! तुमसे पृथक् रहकर आज मैं भी अपने जीवन की अपूर्णता का अनुभव नहीं कर रहा हूँ, ऐसी बात नहीं हैं परन्तु मैं समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। समय आ चुका है वह, जब हम-तुम एक-दूसरे के बन्धन में बंध कर समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित कर सकेंगे। पिता जी मेरे विचारों में कोई बाधा उपस्थित नहीं करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। माता जी चाहे जैसा भी मन में क्यों न सोचें परन्तु उनकी ममता की सात वर्षीय तपस्या ने मुझे बल दे दिया है कि वह मेरे कार्य को प्रेमपूर्वक अपनाकर अपना आशीर्वाद मुझे दे सकेंगी। मैं अभी तक यह समझने में असमर्थ हूँ कि पिता जी के सम्मुख यह प्रस्ताव किस प्रकार प्रस्तुत किया जाय ! क्या इसके विषय में तुम अपना कोई सुझाव मेरे पास भेज सकोगी ?

तुमने मेरी नींद चुरा ली है शीले ! और स्वप्न भर दिये हैं मेरी

नींद के हर क्षण में। जब से यहाँ आया हूँ, सच जानो, कुछ ऐसा लगता है जैसे मानो मैं अपने को वहीं छोड़ आया हूँ। यह देह जो यहाँ रखी है इसमें न तो प्राण ही हैं और न कुछ भावना और कल्पना ही। मानो वह दोनों ही तुम्हारी धरोहर थीं जिन्हें तुमने चुपके से चुरा लिया। जो कुछ भी सोचता या विचार करता हूँ तुम सामने आकर खड़ी हो जाती हो। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मैं तुम्हारे पास से कुछ ले आया हूँ और उसी को वापस ले जाने के लिए तुम हर समय मेरी पलकों में समाई रहती हो।

चोरी तुमने की है और चोर तुम मुझे बना रही हो। चलो मैं ही चोर सही, परन्तु यह चोरी अनजाने में की है, इसलिए क्षमा तुम अवश्य कर सकोगी, ऐसा मेरा विश्वास है। यही वह विश्वास है शीले! कि जिसके सहारे मैं गत सात वर्षों को जीवन-संग्राम में निरन्तर लड़ते हुए एक साहसी सैनिक की तरह काट सका। जब कभी मेरा पथ अंधकारपूर्ण हुआ तभी तुम्हारे मुख-चंद्र की दमकती हुई शीतल किरणों ने आकर मेरा पथ आलोकित किया; जब कभी आपत्ति के भूधर मेरी प्रगति से टकराये तो तुम्हारी शक्ति ने उन्हें उखाड़ फेंकने का मेरे हृदय को साहस दिया, मेरे भुजदंडों को बल दिया, मेरे हृदय को भावना दी, मेरे मस्तिष्क को विचार और प्रेरणा दी और मेरे स्वाभिमान को कर्त्तव्य पर मर-मिटने का दृढ़ विश्वास दिया। और मैं यह सब कुछ कर सका देवि! केवल तुम्हारे ही आदेश पर, तुम्हारे ही पथ-प्रदर्शन पर, तुम्हारे ही बल पर। तुम्हारी वह मधुर मुस्कान मेरे जीवन का उल्लास बनी, तुम्हारी बाँकी चितवन मेरे जीवन का उभार बनी, तुम्हारी वह मस्तानी चाल मेरी प्रगति का साहसपूर्ण उभार बनी।

मुझे आज भी विश्वास है कि मैं कर सकूँगा। मेरे इरादों को कोई बदल नहीं सकता। मैं रहूँगा तो मेरे इरादे और मेरा विश्वास भी रहेंगे। मैं न रहूँगा तो मेरे इरादों और विश्वास पर तुम अपनी विजय-माला चढ़ा देना शीले! परन्तु तुम्हारा 'विजय' पराजित होकर संसार

में जीवित नहीं रह सकता। उसका विश्वास अटल है, उसका पथ एक है और वह भी निर्धारित है। हम दोनों जब उस पथ पर आकर मिल चुके हैं तो फिर दूर होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? सांसारिक नियमों की खानापुरी शेष है, वह कभी भी पूरी हो सकती है। उसके लिए चिंता क्यों ?

मन तुम्हारा उन्मना अवश्य होता होगा, क्योंकि मेरा भी होता है। यह तो प्रकृति का स्वभाव है जिस पर विजय पाने के प्रयास को मैं मूर्खता मानता हूँ। मैं इसे ही मानवता कहता हूं और इससे ऊपर उभर जाने को कुछ नहीं। कोई उसे दानवता या दैविकता कुछ भी कहे परन्तु अपना उससे कोई प्रयोजन नहीं। मेरा मन तुम्हारे पास आने के लिए कभी-कभी बहुत व्याकुल हो उठता है और जी चाहता है कि या तो तुम्हें यहाँ उठा लाऊँ या मैं ही यह सब जंजाल छोड़कर अपने चंदनपुर की ही सेवा में लग जाऊँ। यहाँ का बड़ा नाम, बड़ा काम कभी-कभी जीवन में ऐसी अशांति पैदा कर देते हैं कि मन न जाने कैसा हो उठता है! कितना अच्छा होता यदि मैं केवल चन्दनपुर के तुम्हारे विद्यालय का एक अध्यापक बन जाता।

....

...."

तुम्हारा

विजय

भावुकता में बहकर विजय बाबू और न जाने क्या-क्या लिखते चले गये। आज जी खोलकर उन्होंने लिखा। साथ ही गृहमंत्री को फोन करके चन्दनपुर ग्राम में लगने वाले जिले के जिलाधीश को चन्दनपुर में होने वाली घटना की सूचना देते हुए उसकी सही तरीके पर देखभाल करने का आदेश करा दिया।

उधर चन्दनपुर में दावत के पश्चात् पटवारी जी ने यार लोगों के सामने प्रस्ताव रखा कि आज के मामले की रिपोर्ट थाने में अवश्य कर

देनी चाहिए। आज की तो साधारण-सी घटना थी, यदि कल को बात बढ़ गई तो क्या होगा? इन लुच्चे काश्तकारों की अपनी तो कोई इज्जत है नहीं, फिर दूसरों की इज्जत लेने में इन्हें कितनी देर लगती है?

सबने एक स्वर में पटवारी जी के प्रस्ताव का समर्थन किया और थाने जाने के लिए ताँगा जुड़ गया। ताँगा थाने की ओर रवाना हो गया और इधर गाँव में भी इस बात की चर्चा विद्युत् की भाँति फैल गई। शीलकुमारी का गुप्तचर-विभाग इस समय पूरी सरगर्मी से कार्य कर रहा था। पल-पल की सूचना उसके पास पहुँच जाती थी। शीलकुमारी बड़ी ही सतर्कता से फूंक-फूंक कर कदम रख रही थी परन्तु फिर भी यदि कोई आपत्ति आए तो उसे सहन करने के लिए वह उद्यत थी, उसे भय नहीं था।

पटवारी जी थाने में पहुँचे तो दारोगा जी ने आपका बड़े आदर के साथ स्वागत किया। पटवारी जी के साथ उनके अन्य साथियों की भी आवभगत में कमी नहीं रही। इस प्रकार का आदर-सत्कार उन्हें किसी समय चौधरी धनीराम के साथ थाने में आने पर प्राप्त हुआ करता था। आज अचानक ही उन्हें अपने पुराने दिनों की याद हो आई और उन्होंने पटवारी जी की मन ही मन सराहना की।

पटवारी जी और दारोगा जी ने अन्दर के कमरे में जाकर एक अर्से तक लम्बी-चौड़ी बातें कीं। इन लोगों ने तो केवल इतना भर ही सुना कि, 'मामला संगीन से संगीन बनाना है दारोगा जी!' और इसका उत्तर दारोगा जी ने भी उसी गम्भीरतापूर्वक दिया, 'बहुत संगीन। इतना संगीन कि जिससे यह जिंदगीभर फड़फड़ाती रहे और उड़ न सके। पर कैंच कर दिये जायँ इस चिड़िया के।' और फिर दोनों के ठहाका मार कर हँसने और दिल्लगी करने की भी आवाज इन लोगों के कानों में पड़ी।

इस प्रकार यहाँ की कार्यवाही पूरी करके पटवारी जी बाहर आकर

अपने साथियों से बोले, "सब काम ठीक कर दिया है। अब देखना है कि यह सिल्लो की बच्ची मेरे शिकंजे से निकल कर कहाँ जाती है? और इस बार तो मैं उसको आश्रय देने वाले रणधीरसिंह महाशय को भी यों ही फूली-फूली चुगने के लिए छोड़ देने वाला नहीं।"

एक—"यह आपने बस कमाल की बात की है पटवारी जी! वास्तव में काटना जड़ को ही चाहिए। इस बूढ़े खूसट ने इस चमार की बच्ची को सिर पर चढ़ा कर गाँव भर को उल्लू बना रखा है। बेवकूफ किसान क्या जानें कि इसमें भी इन महाशय की कोई चाल ही होगी। इस आदमी की नसों को तो केवल मैं ही पहिचानता हूँ।"

दूसरा—"अरे! पहिचानता कौन नहीं है इन महाशय को! नौ सौ चूहे खाय बिलय्या जाय हज्ज को वाली बात है। हमने बड़े-बड़े कारनामे देखे और सुने हैं इन महाशय के।"

तीसरा—"और, देखे और सुने किसने नहीं हैं पटवारी जी! हम तो बच्चा की नस-नस पहिचानते हैं! लेकिन कहते हैं कि चलो जो दिन भी बीत जाय वही अच्छा है। लेकिन अब चुप बैठने से भी काम नहीं चलेगा। महाशय ने सिर पर पैर रखने शुरू कर दिये हैं और फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि यारों को तो अंधा मरे या जवान, केवल अपने टके से काम। हम किस-किस की चिंता अपने सिर लें? अपन तो सीधा रास्ता चलना जानते हैं। उसमें जो भी आयेगा सीधा स्वर्ग-धाम की सैर करेगा। क्या चौधरी, क्या धनिया और क्या सिल्लो?" वह नशे में कहता जा रहा था, "और पटवारी जी तुमने भी यदि कहीं पेंतरा बदला तो जान लो कि बस खैर तुम्हारी भी नहीं है।"

पटवारी उसके कंधे पर हाथ मारता हुआ बोला,—"जरा होश से काम लो। यह थाना है और इसमें हवालात भी। तनिक से बहकने पर ही हवालात की सैर करा दी जाती है। यह पुलिस वाले मतलब के यार होते हैं।" यह कहते-कहते पटवारी जी तनिक गम्भीर होकर

बोले, "लेकिन भय्या! इस लाला छगनू के छोकरे मुन्नू ने तो चालबाजी में कमाल ही कर दिया। हम लोगों को यहाँ फँसाकर आप कितना साफ बचा-बचा फिर रहा है। परन्तु उसे इस प्रकार छोड़ा नहीं जा सकता।"

एक—"हर्गिज नहीं छोड़ा जा सकता।"

पटवारी—"यहाँ नाँवे पर नाँवा कटता जा रहा है और एक वह महाशय हैं कि उन्हें कुछ पता ही नहीं। यदि वह गाँव में न आते और हमें इस प्रकार आश्वासन न देते तो क्या हमें बावले कुत्ते ने काटा था कि इस प्रकार पुलिस में मारे-मारे फिरते।"

दूसरा—"आप ठीक कह रहे हैं पटवारी जी! आपको जाकर उनकी खबर लेनी चाहिए।"

पटवारी जी—"यही मैं भी सोच रहा हूँ। आप लोग ताँगे पर गाँव चलें और मैं शहर जाकर उनकी थाह लेता हूँ।"

बस यही निश्चय हुआ। सब यार लोग तो ताँगे में बैठकर गाँव की ओर चल दिये और पटवारी जी सीधे खरामा-खरामा छड़ी हिलाते हुए स्टेशन की ओर हो लिए। ढीला पायजामा, सिल्क का कुर्ता और पैरों में रबड़ के काले जूते जो देखने में पेटेन्ट लैदर के से मालूम देते थे, पीतल की कमानी का निकिल हुआ चश्मा और तिरछी किश्तीनुमा सफेद खद्दर की टोपी एक कान के ऊपर सिर पर सुशोभित थी। पटवारी जी की लम्बाई पूरी सात फीट थी और बदन इतना छरहरा था कि मानो छड़ी पर सब कपड़े हैंगर बाँध कर टाँग दिये गये थे।

पटवारी जी मुन्नू लाला के यहाँ पहुँचे तो देखकर आँखें खुल गईं। कहाँ लाला छगन मगन की नून तेल की दूकान और कहाँ मुन्नू लाला का कोटोजम का मिल। उन्हें विश्वास न हुआ कि वास्तव में मुन्नू लाला ही इस विशाल मिल के मालिक हो सकते हैं। मिल से बाहर ही पटवारी जी को एक खान ने आगे बढ़कर रोक दिया। सेठजी से मिलने की बात कही तो पहिले उन्हें दफ़्तर में जाकर नाम लिखाना

पड़ा। घंटों बैठकर इन्तजार करना पड़ा। बैठे-बैठे भी ऊब उठे। एक बार मन में आया कि यहाँ व्यर्थ समय नष्ट करना है परन्तु रुपये के लालच ने उन्हें बैठकर ठंडे दिल से प्रतीक्षा करने के लिए बाध्य कर दिया।

यहाँ का इतना बड़ा कारो-बार देखकर पटवारी जी के मुँह में पानी भर-भर कर आ रहा था। आकांक्षाएँ रह-रह कर प्रबल हो उठती थीं। करोड़ों रुपया लगा पड़ा था, क्या इसमें से दस-पाँच हजार भी पटवारी जी के नाम का नहीं हो सकता? मन में इसी प्रकार का गुनताला लगा रहे थे कि इतने में आकर पटवारी जी के विषय में पूछताछ की। पता चलने पर उन्हें अतिथि-गृह में ले जाया गया। यहाँ का ठाठ देखकर तो पटवारी जी अवाक् ही रह गये। उनके नेत्र जिधर भी फैल जाते थे फटे के फटे रह जाते थे। चपरासी लोग उनकी यह दशा देख-कर मुस्करा रहे थे, कानाफूँसी कर रहे थे। यह देखकर पटवारी जी को तनिक शर्म आगई और वह एक सोफ़े पर धीरे से डरते-डरते बैठ गये। उनका विचार था कि शायद मुन्नू लाला आते ही होंगे परन्तु तुरन्त ही एक चपरासी ने अन्दर आते हुए कहा, "सेठजी को इस समय आपसे बातें करने की फ़ुर्सत नहीं है। इसलिए आप स्नान इत्यादि से निवृत्त होकर भोजन करें और फिर आराम। संध्या को जिस समय उन्हें अवकाश मिलेगा तब मैं आपको उनके पास लिवा कर ले जाऊँगा।"

पटवारी जी ने ठाठ से स्नान किया। उनके लिए धोती, तौलिया, साबुन, तेल, कंघा और शीशे तो गुसलखाने में कहे आदम लगे हुए थे। आज उन्हें ज्ञात हुआ कि संसार में जीवन किस चिड़िया का नाम है। स्नान के पश्चात् उन्हें भोजन कराया गया। थाल में परसी हुई अनेकों शाकभाजियों, मुरब्बों और चटनियों को देखकर समझे कि शायद हाल ही में यहाँ पर कोई विवाह सम्पन्न हुआ होगा और उसी का यह बचा हुआ सामान उनके स्वागत में उपस्थित किया गया है। उत्सुकता-

वश उन्होंने भोजन कराने वाले महाशय से यह पूछ भी लिया। इसका उत्तर भी उन्हें मुस्कान-मिश्रित ही मिला और उन्हें भोजन करते-करते कुछ लजा जाना पड़ा।

भोजन के पश्चात् पटवारी जी आरामगाह में ले जाये गये। क्या शानदार पलंग था कि पटवारी जी जैसे चार भी उस पर आराम से शयन कर सकते थे। वह उस पर लेटे तो मानो पलंग को भी हँसी आ गई। वह कह उठा, 'महाशय ! यह सेठ लोगों का पलंग है जिस पर आप शयन करने चले हैं। पहिले सेठ बनने का स्वप्न देखिए और फिर इधर को कदम बढ़ाइए। क्यों इस पर लेट कर अपना उपहास कराने चले हैं ? आप से मोटी तो इस पलंग की एक एक पट्टी है।' और वास्तव में वह उस पलंग पर इस प्रकार लेट गये मानो उस पर कोई लेटा ही नहीं। निवाड़ का तनाव भी जुम्बिश न खा सका।

संध्या समय पांच बजे पटवारी जी को सेठ मुन्नू लाला के पास ले जाया गया। सेठ जी के दफ्तर के पास पहुँचे तो दो चपरासियों ने आगे बढ़ कर द्वार खोला और पटवारी जी अन्दर चले गये। गर्मियों का मौसम था, चारों ओर लूएँ चल रही थीं, परन्तु मुन्नू लाला का दफ्तर, वह तो शिमला था शिमला। पटवारी जी को लगा कि मानो उन्हें बर्फ़ की शिलाओं के मध्य ले जाकर खड़ा कर दिया गया है। पटवारी जी ने चारों ओर को देखा परन्तु उनकी कुछ समझ में न आ सका। मुन्नू लाला ने मुस्कराते हुए कहा, "आइए पटवारी जी ! किस सक्ते में पड़ गये। यह चन्दनपुर नहीं है। देखा आपने कितना शीतल है हमारा दफ्तर ? यह हमारा पुराना दफ्तर है। अभी-अभी हमारा नया दफ्तर बन कर तय्यार हो रहा है। उसे आप देखेंगे तो दंग रह जायँगे।"

बेचारे पटवारी जी तो इसे ही देख कर दंग थे। उनकी अक्ल काम नहीं कर रही थी कि आखिर किस प्रकार सेठ मुन्नू लाला ने गर्मी पर भी विजय प्राप्त करके उसे शीतल बना लिया है। उन्हें तुरन्त ध्यान

आया कि बस यह सब पैसे की करामात है। पैसा सब कुछ कर सकता है और फिर सेठ के सामने वाली कुर्सी पर बैठते हुए बोले, "मुन्नू लाला मानते हैं तुम्हें भी! कमाल कर दिया! नाम कर दिया तुमने लाला छगन मगन का और साथ में चंदनपुर तथा हम सब का। हम तो सच कहते हैं कि तुम्हारा यह ठाठ बाट देख कर हमारी छाती फूल उठी है। अब भला चंदनपुर के लिए जो कुछ तुम कर सकते हो वह 'विजय' बेचारा क्या कर सकेगा? और वह सिल्लो चमार की छोकरी…छी… छी…छी।"

मुन्नू लाला—"परन्तु हाल-चाल क्या हैं उनके?"

पटवारी जी—"हालचाल? हाल चाल क्या होने थे? अपने पटवारी चाचा को क्या तुम कुछ कम समझते हो? नाकों चने चबा दूँगा, नाकों चने। तुम यहीं बैठे-बैठे सुनोगे कि वह सिल्लो की बच्ची आज हवालात में बन्द है और कल जेल भेज दी गई है। हाल-चाल निहायत पतले हैं।"

मुन्नू लाला—"और उन चौधरी रणधीरसिंह साहब के?"

पटवारी जी—"इस बार उनके भी शिकंजे कसे जायँगे मुन्नू लाला! आप तो सब देखते रहें। पैसे में बड़ी करामात है। वह इलाके का दारोगा तो आपका गुलाम हो चुका है। भगवान् करके पूजता है मुन्नू लाला आपको।"

मुन्नू लाला—"सच!"

पटवारी जी—"सच नहीं तो क्या झूठ कह रहा हूँ? अभी-अभी वहीं से तो आ रहा हूँ। मुझे तो मुन्नू लाला! जब किसी काम की धुन लग जाती है तो रात को रात और दिन को दिन नहीं गिनता।"

पटवारी जी की यह बात सुनकर मुन्नू लाला प्रसन्नता से उछल पड़े और उनकी बाछें खिल उठीं। उन्होंने मन ही मन कहा, 'अब समझी होगी सिल्लो कि मुन्नू लाला क्या कर सकते हैं? पैसे में वह करामात है कि जिसका जादू दुनियाँ के सिर पर चढ़कर बोलता है।

कहाँ यह पटवारी महाशय और कहाँ मुन्नू लाला। कभी सीधे मुँह भी बातें नहीं करते थे और आज भाटों की तरह हमारी स्तुति करने में यह गर्व अनुभव कर रहे हैं।' उनके सीने में उभार आ गया और आज उन्होंने अनुभव किया कि वह वास्तव में चौधरी रणधीरसिंह के दकिया-नूसी विचार को खंडित करने में अवश्य सफल हो सकेंगे। विजय अपने को जो आज तक त्याग और तपस्या की मूर्ति मान बैठे हैं उन्हें भी एक दिन अपने सामने न झुका दिया तो उनका नाम मुन्नू लाला नहीं। इसी समय पटवारी जी की ओर संकेत करते हुए बोले, "तो फिर यों कहो कि आपका रौब-दाब गाँव पर जमता जा रहा है?"

पटवारी जी—"सब आप की कृपा से मुन्नू लाला! एक दिन तमाम गाँव पैर चूमेगा। चंदनपुर के सेठ मुन्नू लाला को सब लोग अन्नदाता कह कर पुकारेंगे और चौधरी रणधीरसिंह की ओर कोई जाकर झाँकने वाला भी न मिलेगा।"

मुन्नू लाला—"और सिल्लो?"

पटवारी जी—"सिल्लो बेचारी कौन खेत की मूली है भला? जब जड़ ही उखड़ जायगी तो शाखा कहाँ ठहर सकेगी? और चंदनपुर की जनता, वह तो असहाय और निराधार होकर पैर चूमने लगेगी। हमारा फिर वही एकछत्र राज्य होगा। आपके संकेत पर चंदनपुर का भाग्य नृत्य करेगा, आपकी कृपा-कोर पाकर लोग तिर जायँगे और आपकी भृकुटी के सामने सर्वनाश नृत्य करता दिखलाई देगा।"

यह कहकर पटवारी जी ने अपनी झींगुर-जैसी मूँछों को धर कर इतने जोर का ऐंठा चढ़ाया कि उसमें से दो बाल उखड़ कर उनके हाथ में आ गये। जोश में आकर पटवारी जी ने खड़े होते हुए अपने ढीले जापानी रेशम के कुर्ते की आस्तीनों को समेटना और उतारना प्रारम्भ कर दिया। आस्तीनों के अन्दर से उनकी सपाट सी डंडों जैसी भुजाएँ निकलती और छुप जाती थीं और उनके चपटे सीपी से मुँह पर भावों का उतार-चढ़ाव एक विशेष भावभंगी पैदा कर देता था।

मुन्नू लाला इस समय बहुत ही प्रसन्न थे। उन्होंने अब और अधिक बातें इस विषय में करनी पसंद नहीं कीं। पटवारी जी को साथ लेकर अपना पूरा का पूरा मिल दिखलाया और फिर यहाँ से दो मील दूर जो यह कपड़ा-मिल लगा रहे थे, उसे दिखलाने के लिए ले गये! रात्रि को पटवारी जी से इधर-उधर की और गप्प-शप्प होती रहीं और प्रातःकाल जब पटवारी जी गाँव जाने के लिए उद्यत हुए तो मुन्नू लाला ने दो हजार रुपया उन्हें देते हुए कहा, "आप पैसे की चिंता न करना पटवारी जी! परन्तु इस सिल्लो की बच्ची को गाँव से उखाड़ दो। यह धन्ना चमार चंदनपुर में न रहने पाये और महाशय रणधीरसिंह जी, बड़े आये हैं ज़मीदार के बच्चे बनकर, यह गाँव से उसी तरह चले जाँय जिस तरह गधे के सिर से सींग जाते हैं। मैं पूछता हूँ आप से कि इनका चंदनपुर में है क्या? यह देशद्रोही खान्दान है जिसने आज तक चंदनपुर की जनता का रक्त चूसा है। हम और आप चंदनपुर के कदीमी रहने वाले हैं। रणधीरसिंह के खान्दान ने विदेशियों की सहायता से चंदनपुर पर अधिकार किया था। वही आज उन्हें छोड़ देना पड़ा। हमने और आपने जो कुछ पैदा किया है हमारी सख्त मेहनत की कमाई है, खून पसीने की कमाई है। आप गाँव वालों को समझाइए कि यह रणधीरसिंह महाशय आज तक उन्हीं का रक्त चूस कर इतने मोटे-ताजे बने हैं और यह सिल्लो चमारी के धन्ना बाप ने हमेशा उनकी ही गुलामी करके चंदनपुर निवासियों पर जुल्म किया है। जब-जब चंदनपुर निवासियों पर रणधीरसिंह के लगान का दबाव पड़ा है तब-तब हमारे पिता सेठ छगन मगन ने उन्हें रुपया उधार देकर उनके प्राण बचाये हैं, उनके घर बचाये हैं, उनके जानवर बचाये हैं। सूद पिता जी ने अवश्य लिया परन्तु वह तो उनका पेशा था। किसान खेती बोता है और फसल काटता है, उसी प्रकार साहुकार धन उधार देता है और सूद उधाता है। इसमें कोई बात नहीं। क्यों पटवारी जी! क्या आप इसमें कोई पाप मानते हैं?"

पटवारी जी दो हजार रुपये सँभाल कर हाथ में लेते हुए बोले, "इसमें पाप की क्या बात है सेठ मुन्नू लाला ! यह तो सेठों का कर्त्तव्य रहा है। यदि यह न करें तो क्या उनके घर में कोई खेती कट कर आती है ? अब तुम हमही को कहो कि हम क्या करते हैं ? किसी का काम ठीक-ठीक करा देते हैं तो वह प्रसन्न होकर हमें चार पैसे दे देता है। मैं इसे कोई पाप नहीं मानता।"

मुन्नू लाला—"और वह पाप है भी नहीं पटवारी जी ! किसी का कोई काम करने पर यदि वह उसकी कुछ उजरत देता है तो इस में पाप का क्या कारण है ? हाँ बिना किये कुछ लेना……… ।"

पटवारी जी हँसकर बोले—"बिना किये कौन देता है सेठ ! करने पर भी देकर पूरे उतरने वाले हमने बिरले ही देखे हैं। अन्यथा हमने तो सब………चलो जाने दो इन बातों को।" और वह चल दिये। ट्रेन का समय हो चुका था। मुन्नू लाला ने अपनी कार पटवारी जी को स्टेशन तक छोड़ आने के लिए भेज दी।

इसके पश्चात् और बहुत-सी इधर उधर की बातें हुईं। दूसरे दिन पटवारी जी गाँव वापस आ गये।

[१२]

आज शीलकुमारी का चित्त बहुत प्रसन्न था। पत्र मिला था विजय बाबू का जिसे कई बार पढ़ा और पढ़कर चोली में खोंस लिया।

धनीराम जी ने पूछा—"भय्या का खत आया है बिटिया !" और शीला ने मुस्करा कर रोमांचित होते हुए धीरे से सिर हिला कर संकेत दिया, "हाँ।"

"कुछ आने को लिखा है ?" पिता जी ने पूछा और शीला ने फिर उसी प्रकार एक शब्द भी मुख से बिना बोले केवल नयनों की माला से कहा, "हाँ।"

चौधरी धनीराम इसके पश्चात् खेत पर चले गये और शीला गुन-गुनाती हुई अपने मकान में इधर-उधर घूमने लगी। विजय बाबू के पत्र ने जीवन को एक नवीन ज्योति का प्रकाश दिया, एक नवीन स्फूर्ति का उत्साह दिया, एक नवीन प्रगति का बल दिया। मन-मयूर नाच उठा और वह आपसे आप अपने में ही तरंगित होकर झूमती हुई खटिया पर बैठ गई। बैठ भी न सकी वह। तुरन्त खड़ी हो गई और मकान का ताला बन्द करके चौधरी रणधीरसिंह जी की ओर चल दी। दोपहर का समय था। चौधरी साहब को नींद आ गई थी। इस-लिए शीला सीधी अन्दर हवेली में चली गई। बड़ी चौधराइन जी लेटी हुई थीं और छोटी उनके पास पीढ़ा बिछाये बैठी थीं। शीला को आते देखकर प्यार से छोटी चौधराइन ने कहा, "आओ बिटिया शीला ! तुम भी न जाने दिन भर कहाँ-कहाँ मारी फिरती हो ? दो घड़ी तो आराम कर लिया करो। न दोपहरी देखती हो न तिपहरी। साँय-साँय धाँय-धाँय दोपहरी की चलने वाली लूओं में भी तुम्हें चैन नहीं।"

शीला मुस्कराकर पास पहुँचते हुए बोली—"काम जो बड़ा

करना रहता है माजी ! किस पर छोड़ दूँ । विजय बाबू तो यहाँ से जान बचा कर लखनऊ जा बैठे । यह उन्हीं का तो काम है जो मुझे करना पड़ रहा है ।"

चौधराइन जी इस रहस्यमय बात को न समझ सकीं । वह तो इसे प्रेम का एक रूप मान कर अन्दर ही अन्दर आलोडित होती हुई केवल मुस्करा भर दीं परन्तु उन्हें क्या मालूम था कि शीला के इन चार मधुर शब्दों में जीवन का कितना बड़ा महत्व और लम्बी सूजबूझ छुपी हुई शीला और विजय ने अपने जीवन का कार्य-क्षेत्र चुना था राजनीति । थी । उसमें विजय बाबू यदि आज पर आधारित थे तो शीला कल और आगामी न जाने कितने कलों को अपने मस्तिष्क में छुपाये ठोस कार्य-क्रम पर चल रही थी । प्रजातंत्र-शासन क्या है और इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए आगामी युग में राजनीति के खिलाड़ियों को क्या करना होगा यह उससे छिपा नहीं था । कोरी लेक्चरबाजी का जमाना राज-नीति के क्षेत्र में नेता लोगों का कहाँ तक साथ दे सकेगा इसका ज्ञान शीलकुमारी को था । आगे छोड़ और पीछे दौड़ वाले सिद्धांत का अनु-सरण करने वाले नेताओं की आगामी चुनाओं में क्या दशा होगी इसका पूरा ज्ञान शीला को था । भारत सरकार ने अपनी पंचवर्षीय योजना बनाई थी और शीला ने चन्दनपुर की पंचवर्षी योजना का कार्यक्रम प्रारम्भ किया था । चन्दनपुर का नव-निर्माण विजय बाबू के लक्ष्य की पूर्ति की वह सीढ़ी थी कि जिसे बनाये बिना महल पर चढ़ने का स्वप्न देखना एक स्वप्न मात्र ही था । इस कार्य की पूर्ति में शीला ने अपना तन मन लगाया हुआ था ।

छोटी चौधराइन के पास एक पीढ़ा लेकर शीला भी बैठ गई और बड़ी चौधराइन भी लेटी न रहीं । शीला के मुस्कराते हुए मुख-मंडल पर निहारते हुए बड़े स्नेह से बोलीं, "बिटिया ! तुम्हारा विजय बड़ा निष्ठुर है । आज कितने दिन हो गये गये हुए और एक पत्र भी नहीं छोड़ा उसने ।"

बड़ी चौधराइन—"माँ का हृदय कितना कोमल होता है यह बच्चे नहीं पहिचान सकते। इसका पता तभी चलता है जब वह स्वयँ माँ बाप बनते हैं।"

दोनों माताओं के हृदय में उस समय अथाह पीड़ा थी और यह शब्द उनकी आत्मा की पुकार थे। उनके नेत्रों से करुणा झलक रही थी। शीला के मन में एक बार आया कि वह अपना पत्र निकाल कर अभी उनके सामने पढ़ना प्रारम्भ कर दे परन्तु उसने बरबस अपने हृदय के उठते हुए उद्‌गारों को रोक कर गम्भीरतापूर्वक कहा, "पत्र तो उन्हें अवश्य देना था। सम्भवतः किसी कार्य में व्यस्त रहे होंगे।"

छोटी चौधराइन—"इसका अर्थ यह हुआ कि यहाँ पत्र लिखना कोई काम नहीं था?"

शीला—"काम क्यों नहीं था माजी? उनकी ओर से मैं क्षमा-याचना करती हूँ आपसे।" बड़े ही स्वाभाविक और दीन भाव से शीला ने कहा और याचक-दृष्टि से उनके मुख पर निहारा।

छोटी चौधराइन ने शीला के नेत्रों में अपने नेत्र पिरोह कर प्यार से उसे अंक में भर लिया और फिर हल्की-सी चपत उसके गलों पर लगाती हुई बोलीं, "सुनती आ रही हूँ कि दुनियाँ तुम्हें बहुत चतुर और चालाक कहकर पुकारती है परन्तु मुझे तो तुमसे भोली और सीधी बालिका आज तक देखने को नहीं मिली शीला! तुम्हारे शब्दों में कितना मिठास और अपनापन होता है इसे जान लेना भी आसान नहीं।"

शीला मौन थी, शब्द-विहीन। छोटी चौधराइन के इन शब्दों में कितना अपनापन था इसे अनुभव करके उसे अचानक आज अपनी माँ की स्मृति हो आई और नेत्रों की सीपियों में दो मोती ढुलक आये।

"अरे रो रही है बावली!" बड़ी चौधराइन ने शीला का मुख प्यार से अपनी अंक में लेते हुए कहा।

"हाँ मा जी! आपके स्नेह भरे शब्दों ने आज मुझे माता जी की

याद दिला दी। मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि माता-विहीन प्राणी भी संसार में कुछ नहीं। जिस दीपक में ममता का स्नेह न हो वह कै दिन जल सकेगा माजी ?" शीला बोली।

"दिल भारी न कर बावली। तेरे सम्मुख तेरी दो-दो माएँ बैठी हैं। फिर तुझे स्नेह की क्या कमी है पगली !" छोटी चौधराइन बोली।

और इसी समय चौधरी साहब एक पत्र हाथ में लिए अन्दर आते दिखलाई दिये। शीला और दोनों चौधराइन खड़ी हो गईं।

"अरे शीला बिटिया भी यहीं है। यह देखना तो विजय भय्या का पत्र मालूम देता है।" और पत्र वास्तव में 'विजय' का ही था।

पत्र शीला ने पढ़ा। उसमें लिखा था :—

आदरणीय पिता जी सादर चरण-छूना।

पत्र लिखने में विलम्ब हुआ इसका कारण था। पत्र में मैं जो कुछ आपको लिखना चाहता था उसका निश्चय कर चुकने पर भी आपसे कहने में संकोच था, भय लगता था। परन्तु आज मैं उसका दृढ़ निश्चय कर चुका हूँ और अब भय का भी कोई कारण नहीं रहा।

मैंने विवाह करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। और उसके लिए आपका तथा दोनों माता जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए बहुत शीघ्र चन्दनपुर आ रहा हूँ।

शीला के पत्र से ज्ञात हुआ है कि पटवारी जी कुछ बदमाशी पर तुले हैं। वह कुछ कर सकेंगे, ऐसा तो मैं नहीं समझता, परन्तु फिर भी सचेत रहिए। शीला पर किसी प्रकार की आँच न आने पाये। आवश्यक कार्यवाही कर चुका हूँ। शेष आने पर।

दोनों माता जी को मेरा सादर प्रणाम।

आपका आज्ञाकारी पुत्र
विजय

पत्र सुनकर प्रसन्नता भी हुई और तुरन्त ही चौधरी साहब का मुख क्रोध से तमतमा उठा। वह कड़क कर बोले, "इस पाजी पटवारी

की यह मजाल। हरामजादे की हड्डियाँ तुड़वा कर डलवा दूँगा। बदमाश कहीं का। बिटिया तुमने मुझे क्यों नहीं बतलाईं यह राज की बातें ?"

शीला मुस्कराती हुई बोली—"बस इसीलिए नहीं बतलाईं कि कहीं ताया जी क्रोध में आकर पटवारी जी की हड्डियाँ न तुड़वा बैठें।"

चौधरी साहब के उबाल खाते हुए रक्त से श्वांस की गति बढ़ गई और वह एक क्षण के लिए कुछ नहीं बोले। इसी समय शीला फिर गम्भीरतापूर्वक बोली, "यह क्रोध करने का जमाना नहीं है ताया जी ! आपको जरा सी बात को लेकर एक बवंडर खड़ा हो जायगा। पटवारी जी, दारोगा जी और आपके मुन्नू लाला मिले हुए हैं। चन्द गुँडे भी इनके साथ हैं, परन्तु वह साथ केवल चन्द दिनों का ही है। आपको बात-बात में क्रोध आ जाता है इसीलिए मैंने आपको कुछ नहीं बतलाया।"

बड़ी चौधराइन—"शीला बिटिया ठीक कह रही है। आपने पुराना जमाना देखा है। आज की दुनियाँ किधर जा रही है जरा यह भी सोच लिया करो।"

शीला तथा बड़ी चौधराइन के सुदृढ़ मत के सम्मुख चौधरी साहब ने एक शब्द न कहा परन्तु उनके हृदय में सिलगने वाली ज्वाला शाँत न हो सकी। वह धुक-धुक करके जल रही थी। पटवारी जैसे कीट पतंगे भी बराबरी करने लगे, मुन्नू लाला जैसे उनकी कृपा पर आज तक पलने वाले भी उनसे टक्कर लेने लगे और वह लाला छगन मगन जो सुबह शाम दोनों समय तलवे सहलाते थे अब दिखलाई ही नहीं देते। चौधरी साहब ने अनुभव किया कि वास्तव में जमाना बदल गया। एक शब्द भी वह और नहीं बोले और सीधे अपनी बैठक में चले गये। शीला उनके पीछे-पीछे थी।

बहुत देर मौन रहने के पश्चात् शीला ने कहा, "और जो हुआ सो हुआ ताया जी ! परन्तु आपके मित्र के मूर्ख बेटे ने पटवारी जी की

हवेली बनवा दी । मैं चाहती थी कि यह रुपया चन्दनपुर के स्कूल में लगे परन्तु खैर ।"

यही बातें चल रही थीं कि सामने से दारोगा जी आते दिखलाई दिये । शीला का माथा ठनक गया । समझ गई कि अवश्य कुछ दाल में काला है । परन्तु तुरन्त ही बिना तनिक भी भयभीत हुए मुस्कराकर बोली, "ताया जी ! दारोगा जी आ रहे हैं और अवश्य कुछ न कुछ रहस्यमय बात है । परन्तु क्रोध तनिक भी न करें; तब भी न करें यदि वह मुझे गिरफ्तार भी करना चाहें । यदि ऐसी नौबत आ जाय तो मेरी जमानत कराकर केवल विजय बाबू को तार भर कर दें ।"

इसी समय दारोगा जी बैठक की सीढ़ियों से ऊपर चढ़ आये । उनके साथ ही साथ चार पाँच सिपाही पटवारी जी तथा उनके चन्द साथी थे । दारोगा जी बैठक में घुसे तो चौधरी साहब ने बैठे ही बैठे पास में पड़े मूढ़े की ओर संकेत करते हुए कहा, "पधारिये दारोगा जी ! आज कैसे कष्ट किया आपने ?"

दारोगा जी—"हमारा तो काम ही कष्ट उठाने से चलता है चौधरी साहब ! नौकरी जो पुलिस की है । चौबीस घंटे की ड्यूटी है, इसमें आराम कहाँ ?"

चौधरी साहब—"और कहिए इलाके में तो अमन है ।"

दारोगा जी—"अमन कहाँ से रहेगा चौधरी साहब ! जब आप जैसे बुजर्ग और खांदानी आदमी भी छोटे आदमियों को शरण में लेकर उन्हें बदनामी करने से नहीं रोकते ।"

चौधरी साहब—"मैं समझा नहीं आपका मतलब ।" आश्चर्य-चकित होकर चौधरी साहब ने पूछा ।

पटवारी जी मुस्करा कर बोले—"आप नहीं समझ सकते चौधरी साहब ! गाँव में बलवा होता है और आपकी समझ में कुछ नहीं आता; गाँव लुट जायगा और आप सोते रहेंगे ।"

पटवारी जी के यह शब्द कांटे की तरह चौधरी साहब के हृदय में

चुभ गये। उनकी त्योरी चढ़ गई और क्रोध के आवेश में मुख तमतमा उठा। तमाम बदन में एक बारगी ही कम्पन आ गई और फिर कड़क कर बोले,—"आपको जो कुछ कहना है साफ-साफ कहिए। मेरी समझ में आता है या नहीं आता है और मैं सोता रहूँगा या जागता रहूँगा इससे आपका कोई सरोकार नहीं।"

दारोगा जी—"तो मैं शीला को गिरफ़्तार करने आया हूँ। चंदनपुर में बलवा हुआ है और यह बलवा शीला ने कराया है। गाँव के कई सौ आदमियों को लेकर यह पटवारी जी के मकान पर जा चढ़ीं और इन्होंने कहा कि हम तुम्हें उजाड़ कर ही दम लेंगे। क्यों पटवारी जी ?" और इतना कहकर उन्होंने पटवारी जी के मुख पर अपनी बात के समर्थन के लिए देखा।

पटवारी जी—"जी दारोगा जी ! उस समय यदि गाँव के बेचारे यह चार पाँच लोग न आते तो शीला देवी मेरी हड्डी पसलियाँ तुड़वा डालतीं। उस बलवे के भय के मारे मेरे मकान की चिनाई बन्द होगई। राज मजदूर भयभीत होकर भाग गये और अब कोई उधर आने का साहस भी नहीं करता।"

दारोगा जी"—क्या यह सच है ?" पटवारी जी के चंद साथियों की ओर संकेत करके दारोगा जी ने पूछा।

"सच है दारोगा जी !" नीची गर्दन करके उनमें से तीन ने कहा।

दारोगा जी—"तुम क्या कहती हो शीला देवी ?"

शीला देवी—"मुझे इसके विषय में कुछ नहीं कहना। मुझे जो कहना होगा वह न्यायालय में कहूँगी। हाँ आपकी सूचनार्थ इतना अवश्य बतलाये देती हूँ कि यदि उस समय मैं न पहुँच गई होती तो, और मैंने इन्हें न बचाया होता तो इनकी हड्डी पसलियाँ अवश्य टूट गई होतीं। जिसने इन्हें बचाया, यह उसी की रिपोर्ट करके अपने को सुरक्षित करने का जो स्वप्न देख रहे हैं वह इनका भ्रम है। पटवारी जी चन्दनपुर के रहने वाले हैं। इन्हें चन्दनपुर की जनता में रहना है।

इस जनता के बीच वह आप से सद्भावना बनाकर नहीं रह सकते। इन्हें यहाँ की जनता से सद्भावना बनानी होगी।

आपको जो कार्यवाही करनी है वह कीजिए, मैं उद्यत हूँ।"

बात आनन-फानन में देहात के कोने-कोने में फैल गई और लोगों के हुजूम के हुजूम आकर एकत्रित हो गये। गाँव के अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति आगे बढ़कर दारोगा जी के पास तक पहुँचे और सबने मिलकर शीला की जमानत देने के लिए उनके सामने प्रस्ताव रखा परन्तु दारोगा जी अपने विचार में टस से मस नहीं हो रहे थे। उनके स्वाभिमान को आज फिर शीला ने सरेआम ललकारा था और वह उसे दिखला देना चाहते थे कि वह भी अपने अन्दर शासन की एक महान शक्ति रखते हैं। उस शक्ति के बल से वह शीला को जलील कर सकते हैं, अपमानित कर सकते हैं, बर्बाद कर सकते हैं; क्या नहीं कर सकते वह? नौकर शाही के विधान में पला हुआ उनका गुलाम मस्तिष्क जनतंत्रात्मक सत्ता की सचाई और शक्ति को समझने में असमर्थ हो उठा। उनका रक्त अपने अपमान पर उबाल खा रहा था। इस अपमान के मूल में उनका स्वार्थ और अदूरदर्शिता थी, इस कठोर सत्य का ज्ञान वह न कर सके।

गाँव की जनता के ठट्ट के ठट्ट जुड़ते चले जा रहे थे और उस ओर जब दारोगा जी की दृष्टि गई तो उनका हृदय अन्दर ही अन्दर काँप उठा। एक हल्की सी भूल की रेखा उनके मस्तिष्क पर खिंची परन्तु तुरन्त ही स्वार्थ के पुचारे ने उसे मिटाकर साफ कर दिया। इसी समय बैठक के नीचे दगड़े में एक ताँगा आकर रुका और उसमें से देखा कि चिकन का कुर्त्ता, कैलीको मिल्स की धोती, पेटेन्ट लैदर का जूता और सिर पर गांधी केप लगाये हुए दुरंगे वेश में सेठ मुन्नू लाला उतर कर भीड़ में होते हुए दारोगा जी के पास तक आकर बोले, "अरे भाई क्या माजरा है दारोगा जी?"

दारोगा जी मुन्नू लाला को देख कर खड़े होगए। परन्तु वहाँ

किसी ने भी मुन्नू लाला के लिए दूसरा मूढ़ा नहीं बढ़ाया। शीला के मुख पर मुन्नू लाला को देखकर मुस्कान दौड़ गई। दारोगा जी ने तमाम किस्सा मुन्नू लाला को सुनाते हुए कहा—"मैं अपने इलाके में इस प्रकार की बदनामी सहन नहीं कर सकता मुन्नू लाला! मैं शीला देवी को गिरफ्तार करने आया हूँ।"

"आप मेरी जमानत ले सकते हैं इसके लिए दारोगा जी!" मुन्नू-लाला ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"यह हो सकता है। परन्तु जमानत नकद होगी और वह भी थाने में जाकर।" दारोगा जी बोले।

यह बातें सुनकर चौधरी रणधीर सिंह को क्रोध आ गया और वह तम तमाकर बोले—"हरामजादा मुन्नू का बच्चा! हमारे सामने जमानत देने चला है, कमीना कहीं का। उतर जा अभी चबूतरे से नीचे, वरना धक्के लगवा कर नीचे गिरवा दूँगा।"

मुन्नू लाला को पसीना आ गया। उनका बदन थर-थर काँप रहा था। वह एक क्षण भी वहाँ न ठहर सके और सिर नीचा किये हुए चबूतरे से नीचे उतर गये। इस समय मुन्नू लाला गाँव के लोगों की नजरों में काँटा बन गये थे।

शीलकुमारी—"आप जो कुछ करना चाहते हैं वह कीजिए दारोगा जी! मेरी जमानत चन्दनपुर की जनता देगी, मेरी जमानत मेरी आत्मा देगी, मेरी जमानत देने के लिए मुन्नू लाला के नकद नारायण की आवश्यकता नहीं। शायद चन्दनपुर की उमड़ती हुई जनता की लहरों को देखकर आप भयभीत हो उठे हैं परन्तु आप विश्वास रखें कि यह बलवा आपके सिर पर नहीं चढ़ेगा। यह बलवा देश की शांति को भंग करने वाला नहीं बनेगा, शांति के नियमों को भंग नहीं करेगा। चन्दनपुर की जनता अपने कर्त्तव्य को पहिचानने लगी है। अब आवश्यकता इस बात की है कि यहाँ के आफीसर लोग भी अपने कर्त्तव्य से विमुख होकर चलने का प्रयास करें।"

इतना उपदेश सुनने के आदि दारोगा जी के कान नहीं थे। उन्होंने तुरन्त सिपाहियों को शीला के हाथ में हथकड़ी डालने के लिए आज्ञा दी परन्तु सिपाहियों का कलेजा काँप उठा। वह एक पग भी आगे न बढ़ सके। उनके हाथों से हथकड़ियाँ छूटकर भूमि पर गिर गईं और उनका सारा बदन थर-थर काँप रहा था।

सिपाहियों की यह दशा देखकर शीला रानी मुस्कराती हुई आगे बढ़ कर उनके सामने आगई और गम्भीरता पूर्वक बोली—"आप लोग अपने आफीसर की आज्ञा का पालन करें। भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं। चन्दनपुर की सीमा में आपका बाल भी बाँका नहीं हो सकेगा।"

जनता में से अनेकों प्रकार की ध्वनियाँ आईं परन्तु शीला ने सबको शांत करते हुए कहा—"आप लोग शांति से काम लें। भयभीत होने का कोई कारण नहीं। दारोगा जी जो कुछ भी कर रहे हैं उसमें दूरदर्शिता नहीं है। इस प्रकार के दमन से शीला के विचारों को कुचलने का जो इन्होंने स्वप्न देखा है वह नादानी की बात है। मुझे हवालात में रख सकना इनकी सामर्थ की बात नहीं। एक मन की हविस है जिसे पूरा करने पर यह तुले हैं। मेरे लौटने तक गांव में पूर्ण शांति रहनी चाहिए। चचा छगन मगन, मुन्नू लाला या पटवारी जी से कोई भी आदमी किसी प्रकार की बातें न करे।

इसी समय सबके देखते-देखते लाला छगन मगन दौड़ते हुए भीड़ के बीच से होकर सीधे चौधरी साहब के सामने पहुँच गये और अपार भीड़ के सम्मुख रणधीरसिंह के पैरों में गिर पड़े। उनके नेत्रों से आँसू बह रहे थे और तमाम बदन पसीने से लथपथ था। वह गिड़गिड़ा कर दीन भाषा में बोले, "मुझे क्षमा कर दो चौधरी भय्या! मुझे क्षमा कर दो। न जाने किस जन्म का पाप उदय हुआ है कि जिससे मुन्नू जैसे नालायक बेटे ने मेरे घर जन्म लिया। उसने आप का अपमान नहीं किया बल्कि मेरा और मेरे खांदान के उन पूर्वजों का अपमान

किया है कि जिन्होंने आपके और आपके खांदान की छत्र-छाया में रह कर……" उनका गला रूँध गया, उनके शब्द रुक गये और उन्होंने कस कर चौधरी साहब के पैरों को पकड़ लिया।

चौधरी साहब ने लाला छगन मगन को उठा कर छाती से लगा लिया और अपनी धोती की फेंट से उनके नेत्रों की अश्रु-धारा को पोंछा।

शीलकुमारी—"आप अपना कार्य कीजिए दारोगा जी! यह सब तो चंदनपुर के क़िस्से हैं, चलते ही रहेंगे। यह सब लोग आपस में एक दूसरे को सुलट लेंगे। इनकी आप चिन्ता न करें। आप अपने मन की हविस को ठीक करने का प्रयत्न करें।" और इतना कहकर शीला मुस्करा दी।

दारोगा जी शीला को हिरासत में लेकर आगे बढ़े। हथकड़ी लगाने के लिए कहने का उन्हें साहस न हुआ। आगे-आगे शीला दारोगा जी और उनके चंद सिपाही थे और उनके पीछे चन्दनपुर का बच्चा-बच्चा। गाँव की सीमा पर आकर शीला एक क्षण के लिए रुकी और उसने गम्भीरता पूर्वक कहा—"भाइयो! अब आप लोग लौट जायँ। मेरे प्रति आपका सच्चा प्रेम तभी सिद्ध होगा जब आप मेरे प्रारम्भ किये गये कामों को सुचारु रूप से चलाते रहें और चंदनपुर की शांति और सुरक्षा को आँच न आने पाये।"

गाँव की जनता की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी परन्तु शीला के मुख पर एक सौम्य छवि थी। चौधरी रणधीरसिंह को देखने के लिए एक बार शीला ने भीड़ में नेत्र फैलाये परन्तु उनका कहीं पर भी पता नहीं था। जनता वहीं ठहर गई और शीला दारोगा जी के साथ आगे बढ़ चली।

[१३]

जिलाधीश की आज्ञा से चौधरी रणधीरसिंह की जमानत पर दारोगा जी को शीला को छोड़ देना पड़ा। चौधरी साहब ने शीला को अपने साथ ले जब संध्या को चंदनपुर में प्रवेश किया तो उनकी छाती फूल रही थी। आज सुबह से उन्होंने खाना नहीं खाया था। इस बुढ़ापे में भी वह स्फूर्ति थी इस समय उनके बदन में कि कहीं पर भी थकान का चिन्ह दिखलाई नहीं दे रहा था।

गांव वालों को सूचना मिली तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा और जब तक वह अपने मकान पर पहुंचे तब तक एक लम्बी-चौड़ी भीड़ एकत्रित हो गई। छोटी चौधराइन ने शीला को देखते ही गले से लगा लिया और उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। आज इस तीन प्राणियों के घर में किसी ने भी खाना नहीं खाया था और चौधरी धनी-राम उन्होंने तो जब सुना तो दौड़ते हुए आकर चौधरी रणधीरसिंह के पैर पकड़ लिए। इसके पश्चात् उन्होंने शीला को प्यार से गले लगाया। लाला छगन मगन को पता चला तो वह भी तुरन्त इधर आये और आते ही उन्होंने बड़े दीन भाव से शीला से क्षमा मांगनी चाही परन्तु शीला उन्हें रोकती हुई बोली—"ऐसा न करो चचा! आपका इसमें कोई दोष नहीं। दोष उनका भी नहीं जो यह सब कुछ कर रहे हैं। उनका यह स्वार्थ है जो उनसे सब कुछ करा रहा है और यह स्वार्थप्रिय मनोवृत्ति बिगड़े हुए समाज का वह रोग है जिसने आधुनिक समाज को सड़ा दिया है। यह गंदगी समाज में अब अधिक दिन सम्मान नहीं पा सकती। फोड़े के अंगूरी सौन्दर्य को चूमने का युग समाप्त हो चुका चचा, उसे तो अब नश्तर दिखाना होगा। व्यक्ति के ऊपर समाज को बलिदान नहीं किया जा सकता। चंदनपुर के हितों को पटवारी जी,

मुन्नू लाला या उनके अन्य चन्द व्यक्तियों पर न्यौछावर नहीं किया जा सकता। मैं पूछती हूँ कि वही रुपया जो पटवारी जी की हवेली में लग रहा है, वही रुपया जिससे गाँव के चन्द आवारा व्यक्ति मिलकर मदिरा-पान करते हैं, वही रुपया जिससे दारोगा जी को यह काले कारनामे करने के लिए फुसलाया और ललचाया जाता है और वही रुपया जो सम्भवतः कल मुकदमे बाजी में पानी की तरह बहाया जाकर आपकी इस शीला को कारावास की काली कोठरी में बन्द कराने का प्रयत्न करेगा, वही रुपया जो कल वकीलों को झूठा मुकद्दमा खड़ा करने और न्यायाधीश से गलत फैसला लिखाने के लिए व्यय किया जायगा, यदि चन्दनपुर के बच्चों की पढ़ाई में व्यय होता तो कितना सुन्दर होता ?"

लाला छगन मगन मौन थे। उनकी जबान से एक अक्षर भी नहीं निकल रहा था।

"आप चुप हैं चचा! परन्तु यह चुप रहने का समय नहीं है। आपने चन्दनपुर के पैसे पर ऐश की है। आपने चन्दनपुर के गरीब काश्तकारों की मेहनत से कमाई हुई पूंजी से चुंगी वसूल की है। वह चुंगी का एकत्रित रुपया, जो कि आपको चन्दनपुर के ही निर्माण में लगाना चाहिए था, आपने अपने मुन्नू लाला के हाथ शहर में भेज दिया। आपने चन्दनपुर को उजाड़ कर उस बसे हुए शहर को और घिनका और सड़ा हुआ बनाने का प्रयत्न किया है।"

इस समय और अधिक बातें न हो सकीं। शीला ने सभी ग्राम वासियों को प्रेम-पूर्वक विदा किया। और फिर वह चौधरी रणधीरसिंह जी से विदा लेकर अपने घर जाना चाहती थी कि अन्दर से चौधराइन जी ने सूचना भेजी, "शीला से कह दो खाना यहीं खाये। आज सुबह से भूखी हो होगी।"

संध्या का भोजन चौधरी रणधीरसिंह तथा शीला ने साथ-साथ बैठ कर खाया और चौधरी धनीराम भी साथ ही एक बोरी बिछा कर उस

पर बैठे थे। इसके पश्चात् फिर इधर-उधर की बातें होने लगीं। जिलाधीश से चौधरी साहब किस प्रकार जाकर मिले और किस प्रकार उन्होंने तुरन्त शीला की जमानत लेकर छोड़ देने की आज्ञा लिख दी, फिर इस विषय पर सविस्तार बातें हुईं। जिलाधीश कितने सहृदय व्यक्ति थे इसका बखान चौधरी रणधीरसिंह जी ने मुक्त कंठ से किया। उनके बड़प्पन और सहृदयता की सराहना की। फिर अचानक ही उन्हें खाना खाते-खाते पटवारी जी और मुन्नू लाला की नीचता पर क्रोध आ गया और हाथ का कौर हाथ में और मुँह का मुँह में अटक गया। यह देख कर शीला मुस्कराते हुए मीठे स्वर में बोली—"इस समय खाना खाइए ताया जी! यह सब तो चलता ही रहेगा। जो कोई जो कुछ भी करता है उसे देखकर परख लेने और व्यवहार के अनुकूल बना लेने की आवश्यकता है।"

"खा रहा हूँ बेटी! परन्तु यह लोग नमक हराम साबित हुए। यह जो कुछ भी हुआ अच्छा नहीं हुआ।" भारी मन लेकर चौधरी साहब ने कहा।

"बहुत अच्छा हुआ ताया जी! बहुत अच्छा हुआ। एक ओर चन्दनपुर की जनता की आवाज है और दूसरी ओर सेठ मुन्ना लाल जी तथा पटवारी जी का मोर्चा है। अब देखना है विजय किसकी होती है?" प्रसन्नता पूर्वक शीला ने कहा।

उधर दूसरी ओर जब मुन्नू लाला और पटवारी जी को यह पता चला कि शीला को जमानत पर छोड़ दिया गया तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा और साथ ही साथ उन्हें परेशानी भी हुई। पहिले तो वहाँ वैसे ही मुन्नू लाला और लाला छगन मगन में कुत्ते बिल्ली की सी झौड़ झपट हो रही थीं। मुन्नू लाला अपनी बात का समर्थन करते हुए कह रहे थे, "मैंने जो कुछ भी किया है वह ठीक किया है। क्या तुम चाहते हो कि सारे चन्दनपुर की मान मर्यादा की ठेकेदारिनी इस सिल्लो चमारी को बना दिया जाय? इसने गाँव में बगावत की है।

चौधरी रणधीरसिंह अस्त्र-शस्त्र डाल कर उसके पैर चूम सकते हैं परन्तु सेठ मुन्ना लाल यह सब कुछ सहन करने को तय्यार नहीं।"

"और आपका पटवारी भी नहीं।" कड़क कर पटवारी जी ने मुन्नू लाला के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा।

लाला छगन मगन ने दीन भाव से इन दोनों के मुख पर देखा और उनका हृदय पीड़ा से कराह उठा, नेत्र रो पड़े और वह कुछ भी समझ में न आने पर नेत्रों के आँसू पूँछ कर दीनता पूर्वक बोले—"बेटा मुन्नू! मैं अधिक कुछ नहीं कह सकता परन्तु यह अवश्य कह सकता हूँ कि तुमने जो कुछ किया वह ठीक नहीं किया। शीला के पिता धनीराम के अहसानात को मैं इस जीवन में नहीं चुका सकता। चौधरी रणधीरसिंह जैसा दाता मैंने इस जीवन में नहीं देखा। तुमने इन दो प्राणियों की आत्मा को ठेस पहुँचा कर अपने पिता की आत्मा को दुखाया है।"

"अहसानात आप पर किये होंगे। मुझ पर किसी का कोई अहसान नहीं। मैंने जो कुछ भी पैदा किया है वह सब खुद किया है। जितना रुपया आप से लिया था वह सब मैं मय सूद के आपको लौटा चुका हूँ।" गम्भीरतापूर्वक मुन्नू लाला ने कहा और मुँह एक ओर को फेर लिया।

"सच!" आश्चर्य प्रदर्शित करते हुए पटवारी जी बोले। "अरे लाला छगन मगन! ऐसा हीरा बेटा तुम भला कहाँ पाओगे? यह तो तुम्हारा भाग्य ही बलवान् है कि भगवान् ने तुम्हारे घर लक्ष्मी का अवतार पैदा कर दिया।"

पटवारी जी मुन्नू लाला के शब्दों पर सान चढ़ा रहे थे यह बात लाला छगन मगन से छुपी नहीं थी और उन्हें स्पष्ट दिखलाई दे रहा था कि यह पटवारी का बच्चा जो मुन्नू की नाक का बाल बन गया है अवश्य इसे डुबा कर ही दम लेगा। वह भारी मन करके वहाँ से चले गये। घर के सब अधिकार वह मुन्नू लाला को दे चुके थे। वह तो यहाँ

पर अब केवल एक राहगीर की तरह रह रहे थे। यह मकान उनके लिए धर्मशाला थी। था सब कुछ उन्हीं के नाम परन्तु क्या मजाल जो मुन्नू लाला की इच्छा के विरुद्ध यहाँ कोई परिन्दा भी पर मार सके।

इस समय मुन्नू लाला को दारोगा जी की ईमानदारी पर शक हो रहा था। रात का झुटपुटा सा होते ही मुन्नू लाला और पटवारी जी ताँगा जुड़वाकर थाने पहुँचे और दारोगा जी से भेंट करने पर उन्हें पूरा राज मालूम हुआ।

"इसे भी कम न समझना सेठ! यह चौधरी भी बड़ा घुटा हुआ आदमी है। आज तुम्हारी ही खातिर मैंने बीस साल पुराना याराना खाक में मिला दिया। तुम्हें क्या पता कि चौधरी की बदौलत हमने क्या कुछ कमाया है?" दारोगा जी तनिक भारी मन करते हुए बोले।

"इसकी आप क्या चिंता करने लगे दारोगा जी! सेठ मुन्नू लाला का ठाटबाट क्या आपसे कुछ छिपा है? चौधरी जैसे पच्चीस वहाँ पर रोज चिलमबरदारी किया करते हैं। और फिर वह दिन गए जब चौधरी साहब फाख्ता उड़ाया करते थे। अब तो चन्द दिनों में आप देखेंगे कि दानों के भी लाले होंगे।" पटवारी जी ने अपनी मूँछों को तिड़का कर कहा।

"रुपये पैसे की आपने क्या चिन्ता की दारोगा जी? रुपया पानी की तरह बहा दूँगा परन्तु केस को बस ऐसा गाँठ देना कि यह सिल्लो चमारी एक बार बड़े घर की सैर कर आये।" मुन्नू लाला ने पेट पर हाथ फेरते हुए कहा।

"इसकी तुम चिता न करो सेठ! जो केस इस कलम ने बाँध दिया उसे खोलना जिलाधीश और ऐरा गैरा मजिस्ट्रेटों की तो क्या मजाल, स्वयँ भगवान भी यदि आकर दाँतों से खोलना चाहें तो नहीं खोल सकते।" दारोगाजी अभिमान में भर कर बोले। "संगीन से संगीन केस को ना कुछ बना देना और ना कुछ को संगीन से संगीन बना देना बाँये हाथ का खेल है।"

"दारोगा जी ठीक कह रहे हैं सेठ मुन्ना लाल जी ! मुझे क्या कुछ नहीं पता है भला ?" और इतना कहकर पटवारी जी ने एक लम्बी चौड़ी सूची सेठ जी के सामने गिना डाली जिनमें कई-कई साल को लोग केवल चौधरी साहब के कारिन्दे के संकेत मात्र पर लाद दिये गये थे ।

"लेकिन वह जमाना बदल गया पटवारी जी ! अब तो फूँक-फूँक कर कदम रखना होता है ।" दारोगा जी बोले ।

"लेकिन माफ कीजिये दारोगा जी ! यह बात आप जैसे अनुभवी लोगों पर लागू नहीं होती । यह उनके लिए है जो महकमे में कुछ नए नए छोकरे भर्ती होकर आ गये हैं ।" दारोगा जी के झूठे अभिमान को प्रश्रय देते हुए पटवारी जी ने कहा ।

"पटवारी जी की यह बात बिलकुल सच है दारोगा जी ।" सेठ मुन्नू लाला पटवारी जी की बात का समर्थन करते हुए बोले ।

इस पर दारोगा जी अभिमान को छाती में दबाकर धीरे से मुस्कराते हुए बोले—"यह सब तो आप लोगों की कृपा है । अच्छा अब यह भी तो बतलाओ कि आपकी क्या खातिर की जाय ?"

"जो आपकी इच्छा हो ।" पटवारी जी ने बेतुकल्लुफी से कहा ।

शराब का दौर चला और उसी अवसर पर खुमार में झूमते हुए मुन्नू लाला ने बतलाया कि उनकी यह सारी सम्पत्ति बस इस मदिरा की ही देन थी । उन्होंने आज तक जीवन में जितने भी सौदे किये हैं वह सब इसी की मेज पर बैठ कर हुए हैं । आज का भी यह एक सौदा था जिसमें दारोगा जी ने गिलास से गिलास मिलाकर, हाथ पर हाथ पटक कर यह विश्वास दिखाया कि विजय उन्हीं की होगी परन्तु रुपये की कमी हो जाने पर मामला पलट सकता है । सेठ मुन्नू लाला ने मैजिस्ट्रेट तक को खरीदने का बलेंक चैक हस्ताक्षर करके दारोगा जी के हाथ में थमा दिया । आज काफी रात गये यह दोनों व्यक्ति चन्दनपुर को वापिस लौटे ।

मुन्नू लाला कुछ अधिक पिअक्कड़ खाँ नहीं थे, यों ही सभा सोसाइटी का मान रखने के लिए कुछ शौक कर लेते थे। आज दारोगा जी ने उनका गिलास जो ऊपरतक भरा उसे वह मना न कर सके। ज्यों-त्यों करके पी तो गये परन्तु सुधबुध खोकर बहक उठे। रास्ते में नशे ही के अन्दर पूरी कार्यवाही का बखान कर गये। पटवारी जी पर ऐसे दो चार घूँट पीने का कोई असर नहीं होता था। बोतल उठाई और हलक में डाल ली—बस इसीलिए तो उनका बदन जल भुन कर कांटा हो गया था और उन्हें अपनी इस करामात पर अभिमान भी था। उन्होंने मुन्नू लाला से कह भी दिया—"सेठ मुन्ना लाल जी! नाहक शौक करते हैं आप तो पीने का। एक चुल्लू में बहक उठे।"

और सेठजी को वास्तव में अपनी कमजोरी पर लज्जा आ गई। कुछ शरमाई सी आवाज में बोले, "पटवारी जी! मैं कुछ पीता थोड़े ही हूँ। यूँ ही आप लोग बुरा न मानें इसलिए मुँह से लगाकर शहीदों में नाम लिखा लेता हूँ।"

और फिर रास्ते भर पटवारी जी अपनी पीने की करामातों और बड़े-बड़े दारोगा थानेदारों को मात खिलाने की कहानियाँ सुनाते चले आये। परन्तु आखीर में उन्होंने भी कहा—"लेकिन भय्या मुन्नू चौधरी रणधीरसिंह हमारे भी चूना लगाने वाले हैं। बस मात खिला देते हैं यूँ कहो न!"

लेकिन इस समय मुन्नू लाला को होश नहीं था। वह बुत बने ताँगे में पसरे पड़े थे।

उधर छगन मगन के पेट में पतला हो रहा था। गाँव की गली-गली और आस-पास का जंगल उन्होंने छान मारा परन्तु कहीं पर भी मुन्नू लाला का पता नहीं चला। इसी परेशानी में वह इधर-उधर चक्कर काट रहे थे। चौधरी रणधीरसिंह की मुखालफत करके चन्दनपुर में रहना लाला छगन मगन की दृष्टि में असम्भव था। धनीराम, जिसकी लाठी को उलाँकने वाला आस-पास के देहात में कोई बाँका पैदा नहीं

हुआ था, उससे बैर मोल लेकर मुन्नू ने सख्त नासमझी की है। उन्हें रह-रह कर पटवारी के बच्चे पर क्रोध आ रहा था और वह दाँत किट-किटा कर उसे हजार गालियाँ देते पागल की तरह गाँव के गलियारों में इधर उधर फिर रहे थे।

इसी परेशानी में वह चौधरी रणधीरसिंह और धनीराम जी के पास भी गये और गिड़गिड़ा कर उनसे मुन्नू के प्राणों की भिक्षा माँगी।

"क्या छोटी बातें करते हो लाला छगन मगन ! हम लोग खांदानी आदमी हैं। जिस पौदे को अपने हाथ से लगाते और सींचते हैं उसे कभी नहीं काटते।" चौधरी रणधीरसिंह ने गर्व के साथ कहा। "तुम्हारा मुन्नू कहीं जाकर सेठ-वेठ बन गया होगा परन्तु यहाँ हमने उसे अपनी रिआया की तरह पाला पोसा है। वह लाख गलती भी करे परन्तु हम उसे क्षमा ही करेंगे। और सामने देखो रानी शीला को जिसके मुख पर इस समय भी कितनी सौम्य क्रांति और मधुर हास्य की अपार छवि छिटक रही है। इसके हृदय की स्वच्छता और निर्मलता को तुम परख नहीं सकोगे इस जीवन में लाला छगन मगन। इसे परखने के लिए अपना सब कुछ त्याग देना होगा।"

"लेकिन मेरे पास है ही क्या चौधरी साहब त्यागने के लिए ?" दीनतापूर्वक लाला छगन मगन ने कहा।

"इन्हें वास्तव में कोई अधिकार नहीं है ताया जी ! मैं सुन चुकी हूँ कि आज सुबह मुन्नू लाला ने चचा को बहुत फटकारा और यहाँ तक कि घर से निकल जाने की भी धमकी दी।" शीला ने सहानुभूति-पूर्ण स्वर में कहा। परन्तु चौधरी रणधीरसिंह जी को अपने मित्र लाला छगन मगन की इस दशा पर एकदम क्रोध आ गया और वह उत्तेजित होकर बोले, "उस लुच्चे की यह मजाल। अभी गाँव से धक्के लगवा कर बाहर निकलवा दूँगा।"

"ऐसा न कहो भय्या चौधरी, ऐसा न कहो। मुन्नू की अम्मा ने मरते समय यह धरोहर मुझे सौंपते हुए कहा था कि लाख कष्ट उठाने

पर भी कभी मुन्नू को कष्ट न देना।" और यह कहते हुए लाला छगन मगन के नेत्रों से अश्रु-धारा बह निकली।

"और चाची के उन शब्दों को चचा ने जीवन में वेद-मंत्र करके निभाया है ताया जी!" शीला कनखियों से मुस्कराकर बोली। "आपको क्या नहीं मालूम है कि चाची के मरते ही कैसे-कैसे रिश्ते चचा के लिए आये और आपने सबको ठुकरा दिया। दीनापुर के सेठ की इकलौती कन्या के रिश्ते को तो आपने छाती पर पत्थर रखकर ही मना किया था। पाँच लाख नकद और उनकी सब जायदाद इनको मिल रही थी। फिर मुझे क्या बतलाना है, आप सब जानते हैं?"

"अरे जाओ लाला छगन मगन! जाओ! तुम अपना काम देखो। तुम और तुम्हारा बेटा जी खोल कर नीचता कर लो परन्तु हम पर उसका कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं। वह चाँदी के पोले वाली लाठी तुमने देखी नहीं है क्या छगनू? लेकिन उसे अब एक कोने में रख दिया है। वरना उस दिन तुम्हारे पटवारी, मुन्नू लाला और दारोगा तीनों की खोपड़ियाँ यहीं चौपाल के नीचे पड़ी हुई सैन मारतीं।" और इतना कहकर चौधरी धनीराम ने छाती और भुजदण्डों को उभार कर गर्दन को बल देते हुए नेत्रों को आकाश पर टिका दिया। उनका दाहिना हाथ मूँछों पर था और बाँया फड़क कर अपने बांये पैर की जंघा पर जा टिका। चौधरी धनी राम के हृदय की ज्वाला अभी तक शांत नहीं हुई थी। उनके भुजदण्ड रह-रह कर फड़कते थे और शांत हो जाते थे, रक्त में रह रह कर उबाल आता था और शीला की शांत मौन दृष्टि से टकराकर पीछे लौट पड़ता था, दिल में रह-रह कर उबाल आता था और शीला की शात मौन दृष्टि से टकराकर पीछे लौट पड़ता था, दिल में रह-रह कर बवंडर उठता था परन्तु चौधरी रणधीरसिंह के असीम हृदय-सागर में विलीन हो जाता था। वह इस समय लाला छगन मगन का मुँह भी देखना नहीं चाहते थे। उन्होंने सेठ की खाक में मिलती हुई सिठाई को कौन जाने कितनी बार अपने भुजदण्डों की सुरक्षा प्रदान की थी

और उसी नीच की संतान ने आज उनके कलेजे के टुकड़े को उस नीच दारोगा के हाथों जलील करा दिया। उसे क्षमा नहीं किया जा सकता, वह दया का पात्र नहीं है।

चौधरी धनीराम के नेत्र दो लाल अंगारों के समान दहक रहे थे और हाथों की रह-रह कर मुट्ठियाँ बँध जाती थीं। लाला छगन मगन धनीराम जी की यह दशा देखकर भयभीत हो उठे। उन्हें पसीना आ रहा था और उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। उन्होंने गिड़गिड़ा कर धनीराम के पैर पकड़ कर मुन्नू के प्राणों की भिक्षा मांगी। परंतु धनीराम कुछ न बोले और खड़े होकर पैरों को झटकते हुए लाला छगन मगन को एक ओर करके वहाँ से चले गये।

चौधरी धनीराम के चले जाने पर शीलकुमारी ने लाला छगन मगन को समझा बुझा कर अधीर न होने के लिए कहा और चौधरी रणधीर-सिंह जी ने भी मुस्कराकर कहा—"लाला छगन मगन! जब अपने कलेजे पर लगती है तभी आदमी को वास्तव में पीड़ा होती है। धनीराम के हृदय की पीड़ा को परख लेने की सामर्थ तुम में नहीं हैं। तुम जबान के दिलेर हो, वह काम का दिलेर है—लेकिन तुम्हें यह समझना था कि उसका जो ऋण तुम्हारे परिवार पर है उसे तुम्हारे मुन्नू लाला जिन्दगी भर भी उनकी सेवा करके भी नहीं उतार सकते।"

"मैं मानता हूँ चौधरी साहब!" गिड़गिड़ा कर लाला छगन मगन बोले।

"लेकिन जबानी।" मुस्कराकर चौधरी रणधीरसिंह ने कहा।

"आप भी क्या कहते हैं ताया जी! अब केवल जबानी जमा खर्च ही तो रह गया है चचा के पास। असल पर तो सेठ मुन्ना लाल जी का अधिकार हो गया है और चन्द दिन में आपके पटवारी जी उसके मालिक बनने वाले हैं।" शीला हँस कर बोली।

"यह हँसने की बात नहीं है बेटी! उस पटवारी के बच्चे से मुन्नू की रक्षा करनी है।" गिड़गिड़ा कर लालाछगन मगन ने कहा।

"क्यों व्यर्थ की बातें करते हो चचा! आप समझते हैं कि आप इस प्रकार गिड़गिड़ा और रो झींक कर दुनियाँ भर को मूर्ख बना सकते हैं। ताया जी आपके सच्चे मित्र हैं इस लिए आपका विश्वास करते हैं परन्तु मैं आपका तनिक भी विश्वास नहीं करती। आप मुझे मूर्ख नहीं बना सकते। जाइए अपना काम कीजिए। आपके मुन्नू लाला को न तो ताया जी ने ही मरवा डाला है और न पिता जी ने ही। आपका दिल काला है। इसलिए आपको सारी दुनियाँ ही अंधकारपूर्ण दिखलाई देती है। मुन्नू लाला और पटवारी जी दारोगा जी से मुझे फँसाने के लिए गुप्त मंत्रणा करने गये हैं। आराम से घर बैठिए, आते होंगे।"

रात काफी हो चुकी थी। इसी समय सामने के दगड़े में एक ताँगा आता दिखलाई दिया। चंद्रमा की चाँदनी में शीलकुमारी ने देखकर पहिचानते हुए कहा, "लीजिए वह आगाये आपके मुन्नू लाला और पटवारी जी। शायद कल दुबारा मेरी गिरफतारी का प्रबन्ध करके आ रहे हैं।"

लाला छगन मगन मुख से एक शब्द भी न बोल सके। धीरे-धीरे चबूतरे से नीचे उतर गये।

[१४]

चौधरी रणधीरसिंह और शीला प्रातःकाल जंगल से घूम कर आ रहे थे तो क्या देखते हैं कि विजय बाबू हाथ में थैला लिए पैदल ही बैठक की ओर लपके जा रहे हैं। सिर नंगा था। पोशाक कुर्त्ता और पायजामा, बस यही सब कुछ था। पैरों में चप्पलें थीं और उनसे उड़-उड़ कर धूल उनकी कमर तक पहुँच रही थी। वह ज्यों ही चबूतरे पर चढ़े तो क्या देखते हैं कि वहाँ माथे पर हाथ रखे लाला छगन मगन एक मूढ़े पर विराजमान थे। विजय बाबू ने उन्हें हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। यह नमस्कार सुन कर मानो लाला नींद सी से जाग उठे और खड़े होते हुए बोले, "विजय भय्या! तुमने इस समय आकर मुझ पर बड़ा उपकार किया भय्या!"

"क्यों? क्या बात हुई आखिर?" मुस्कराते हुए विजय बाबू ने पूछा।

"बात क्या है भय्या, भाग्य की बात है। जब भाग्य ही साथ नहीं दे रहा है तब कोई क्या करे?" और इतना कहकर फिर माथे पर हाथ रख कर बैठ गये।

विजय—"पिताजी कहाँ हैं?"

लाला छगन मगन—"उन्हीं की तो मैं यहाँ बैठा राह देख रहा हूँ।"

विजय—"अच्छा मैं अन्दर हो आऊँ।"

लाला छगन मगन—"हाँ भय्या अवश्य हो आओ अन्दर। फिर आने पर सब कथा कहानी कही जायगी। बस तुम ही तिरा सकते हो इस समय तो मेरी डूबती हुई नौका को।"

विजय बाबू समझ गये कि अवश्य कुछ दाल में काला है और

वह अधिक समय यहाँ न लगाकर अन्दर मकान में चले गये। इसी समय शीला और चौधरी रणधीरसिंह जी भी चबूतरे पर आपहुँचे। उन्हें देख कर लाला छगन मगन प्रसन्नता पूर्वक दाँत निकालते हुए बोले—"विजय भय्या आये हैं चौधरी भय्या!"

चौधरी साहब आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले—"किसने कहा?"

"कहता कौन भय्या! अभी-अभी मुझ से बातें करके अन्दर गये हैं।" लाला छगन मगन ने उत्तर दिया।

चौधरी साहब जान पूछ कर भी कुछ आश्चर्य सा प्रकट करते हुए मूढ़े पर बैठ गये परन्तु शीला बैठने का प्रयास करते हुए भी वहाँ न बैठ सकी। हृदय की उठती हुई उमंग उसे बरबस अन्दर खींच कर ले गई। विजय बाबू अपनी माता जी के पास खटिया पर बैठे स्नेह पूर्ण बातें कर रहे थे।

शीला को देख कर खड़े होते हुए विजय बाबू बोले, "अरे शीला! अच्छी तो रहीं। पिता जी कहाँ गये हैं?"

"सब कृपा है आपकी बाबू! ताया जी बाहर बैठक में लाला छगन मगन के पास बैठ गये हैं।" शीला ने उत्तर दिया।

विजय बाबू के आने की बात गाँव भर में फैल गई। कुछ लोगों ने तो यही समझा कि सम्भवतः कल की घटना के ही कारण उनका आना हुआ होगा। मुन्नू लाला और पटवारी जी ने सुना तो उनके होश ही गुम हो गये। मस्तिष्क में एक उथल पुथल मच गई।

एकांत में शीला और विजय बाबू की बहुत देर तक बातें होती रहीं। यह दोनों शीला के ही कच्चे मकान में एक खटिया पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। इसी समय उस तांगे का बहलवान, जिसमें बैठ कर कल संध्या को मुन्नू लाला तथा पटवारी जी दारोगा जी के पास गये थे, आया और उसने उनकी पूरी बातें एक-एक करके सुना डालीं।

विजय बाबू को मुन्नू की नीचता पर बहुत खेद हुआ और कल की कष्टपूर्ण घटना की सुनकर तो उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि

उसे इस कार्यवाही का उचित दण्ड मिलना ही चाहिए। बहलवान कल की घटना सुना कर चला गया। उसके पश्चात् विजय ने शीला का हाथ अपने हाथ में लेते हुए धीरे से कहा, तुम्हें बड़ा संघर्ष करना पड़ रहा है शीला! परन्तु सच जानो शीला मैं तुम्हें चन्दनपुर की महारानी मानता हूँ।"

"ऐसा न कहिये बाबू! मैं रानी नहीं सेविका हूँ चंदनपुर की। अपने गाँव की सेवा करने में यदि मुझे प्राणों की भी बाजी लगानी होगी तो मैं मुस्कराते हुए लगाऊँगी। मैं परिश्रम कर रही हूँ चंदनपुर के उत्थान के लिए और यह साबित कर देना चाहती हूँ कि चंदनपुर उन्हीं लोगों का है जो यहाँ रहकर परिश्रम करते हैं और अपने परिश्रम से चंदनपुर के उत्थान में सहयोग देना चाहते हैं। चन्दनपुर में रुपया कमाकर शहर में कोठी बनाने वाला चन्दनपुर का चोर है। चन्दनपुर की जनता इस बात को सहन नहीं कर सकती।" शीला ने कहा।

"तुमने तो एक सुन्दर सा सिद्धान्त बना लिया है शीले! तब तो तुम्हारी दृष्टि में मुन्नू लाला चंदनपुर के चोर हैं।" मुस्कराकर विजय बाबू ने शीला की हथेली अपने दोनों हाथों में ले ली।

"चोर ही नहीं बाबू! यह तो डाकू हैं जो सारे चन्दनपुर को लूट कर ले जाना चाहते हैं। यह शहरों में उद्योग-धन्धों को बढ़ावा देकर गाँव के काश्तकारों को यहाँ से छीन रहे हैं। यहाँ की जमीनों पर काश्तकारों की कमी होने से भारत की जनता के मुख की रोटी छीन रहे हैं और यहाँ के किसानों की गाढ़ी कमाई से कर वसूल करके शहर में अपने ऐशो आराम में व्यय कर रहे हैं।" यह कहते हुए शीला के मुख पर उत्तेजना थी और बदन में सहज कम्पन।

विजय बाबू ने शीला के यह तीखे विचार सुने और हृदय में अनुभव किया कि वास्तव में वह सच कह रही है। मुन्नू लाला ने चंदनपुर के साथ विश्वासघात किया है। उसके पास जो पूँजी है वह चन्दनपुर और वहाँ के समाज की धरोहर है। उसका सही उपयोग

करना उसका कर्तव्य है। आज उसी रुपये का उपयोग वह चंदनपुर की जनता में फूट पैदा करने और वहाँ की सामुदायिक-विकास योजनाओं को जर जरित करके नष्ट कर देने के लिए वह कर रहा है। यह चंदनपुर और चंदनपुर की जनता के प्रति अन्याय है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए इस प्रकार समाज के अहित की भावना का प्रसार करने वाले व्यक्ति को दंडित करना आवश्यक है। उनके मस्तिष्क में एक उथल पुथल पैदा हो गई।

× × × × × ×

सचाई छुप नहीं सकती, बनावट के उसूलों से।
खुशबू आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से॥

यह सच है शीला! बनावट एक दिन स्वयं खुल जाती है। परन्तु मैजिस्ट्रेट बुध प्रकाश ने कमाल किया।" विजय प्रसन्नता पूर्वक बोले।

"आज मुन्नू लाला को पता चला कि पैसा सबकी आत्मा को नहीं खरीद सकता। पटवारी जी को खरीद लिया……"

बातें बीच ही में रुक गईं। गाँव में फैली हुई अफवाह को सुन कर लाला छगन मगन काँपते हाँपते किसी प्रकार सीढ़ी पर चढ़े और हाथ जोड़ कर दीनता पूर्वक बोले, "बेटा यह मैं क्या सुन रहा हूँ?"

"आपने ठीक ही सुना है चचा! जो लोग दूसरों के लिए गढ़ा खोदते हैं उनके लिए गढ़ा स्वयं खुद कर तय्यार हो जाता है। शीला ने उनके साथ कुछ नहीं किया। मुन्नू लाला तो स्वयं ही अपनी चालबाजी के शिकार बन गये। उन्होंने समझा था कि जिस प्रकार चांदी की ठोकर देकर पटवारी और दारोगा महाशय को आगे-आगे कर लिया उसी प्रकार यह मैजिस्ट्रेट बुध प्रकाश को भी अपने रास्ते पर ले आयेंगे। परन्तु जिस समय यह महाशय रुपया देने पहुँचे तो उन्होंने उसी समय पुलिस को बुला कर इन्हें पुलिस के हवाले कर दिया। बस बात केवल इतनी सी है।" मुस्कराकर विजय बाबू ने कहा।

"आपको तुरन्त उनकी जमानत के लिए जाना चाहिये चचा!"

मुस्कराते हुए शीला बोली। शीला के मुस्कराने ने लाला छगन मगन के दिल में दहकती हुई ज्वाला पर घृत का कार्य किया। वह एक दम बौखला उठे और बबकार बोले—"हर समय हँसी अच्छी नहीं होती।"

"तब क्या आप इसे हँसी समझ बैठे हैं चचा! यह हँसी नहीं सच है। शहर की कोतवाली में आपके सुपुत्र बैठे आपकी राह देख रहे हैं। एक नोटों की मोटी सी गड्डी जिसे आपने चन्दनपुर के स्कूल के लिए देना पसंद नहीं किया, लेकर पहुँच जाइए और कोतवाल साहब के चरणों में झुका कर मुन्नू लाला को मुक्त करा लीजिये।" शीला ने गम्भीर होकर कहा। "लुटा डलिए पैसा। इस पैसे से यहाँ गाँव के बच्चे कुछ पढ़ लिख कर योग्य बन जाते, चन्दनपुर का भविष्य बदल जाता, यह पाप हो जाता। अब पटवारी जी की हवेली बन गई, दारोगा जी की शराबें उड़ गईं, और आज मुन्नू लाला दरोगा जी तथा पटवारीजी सरकारी हवेली में मेहमान बन गये यह बड़े ही पुण्य का कार्य हुआ। परन्तु आप अब साधू हो गये, रुपये पैसे से आपका कोई सम्बंध नहीं रहा, आप क्यों इस झमेलेबाजी में पड़ें! भगवान का भजन कीजिए, राम-नाम जपिए, आपके लिए तो वैसे ही मुन्नू लाला और वैसे ही चुन्नू लाला।" और इतना कहकर शीला ने दूसरी ओर को गर्दन फेर ली, मानो वह उनका मुँह देखना भी पसन्द नहीं करती।

लाला छगन मगन चुप थे। क्या कहें कैसे कहें कुछ समझ ने काम न दिया। आखिर परेशान होकर उठ खड़े हुए। उसी समय विजय बाबू मधुर-मुस्कान मुख पर लिए धीरे से बोले—"बैठो चचा! कोई चिंता की बात नहीं। जमानतें करने का ठेका तो पिता जी ने अपने सिर पर लिया ही है। कल शीला की जमानत की तो क्या आज मुन्नू लाला की न करेंगे?"

लाला छगन मगन ने दीन भाव से विजय बाबू के मुख पर इस प्रकार देखा जिस प्रकार कोई बच्चा अपने पिता से मार खाने के पश्चात पुचकारे जाने पर उसके नेत्रों में नेत्र डालकर देखता है। वह बिलकुल

मौन थे और हृदय में थी अथाह पीड़ा। दिल टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा था। बदन से रह-रह कर पसीना छूटता था और समस्त शरीर में कम्पन आ जाती थी। आँखों के सामने मुन्नू लाला की तस्वीर नाच रही थी कि किस प्रकार उसे पुलिस पकड़ कर हवालात में बन्द करने के लिए ले गई होगी।

लाला छगन मगन फिर चिंता निमग्न मूढ़े पर बैठ गये और शीला तथा विजय बाबू वहाँ से उठकर जंगल की तरफ चले गये। चन्दनपुर से एक मील दूर गंग नहर बहती थी और उसी के किनारे पर यह चौधरी रणधीर सिंह जी का एक चक ४०० एकड़ का फार्म था। दोनों उसी ओर से होते हुए गंग नहर की पटरी पर चढ़ गये और तीन फलाँग जाने पर नहर का पुल आ गया। पुल के पास नहाने के लिए पक्का घाट बना हुआ था। दोनों उस घाट पर उतर कर नहर की धारा के निकट पहुँच गये और बैठकर पैर पानी में लटका दिये।

रास्ते भर इधर उधर की बातें चलती रहीं। मुन्नू लाला के किस्से को दोनों ने इस प्रकार भुला दिया मानो वह कुछ हुआ ही नहीं और उससे उनके जीवन का कोई सम्बन्ध ही नहीं। जीवन के यह क्षण केवल शीला और विजय के लिए थे, चन्दनपुर की समस्याओं के लिए नहीं, समाज के लिए नहीं, देश के लिए नहीं परन्तु क्योंकि उनके जीवन इन सभी के एक अंग थे इसलिए यह क्षण भी सभी के लिए थे।

"आज की संध्या कितनी सुहावनी है शीला। संध्या ने अपना स्वर्णिम आँचल पसार कर मानो सूर्य को उसमें छुपा लिया है। दिन भर की थकान, दिन भर की तपन बुझा दी अपने प्रेमांचल को पसार कर। शीले! मैं भी बहुत थक गया हूँ, तुम सच जानो। प्रेमांचल फैला दो अब और मेरी सब परेशानियों को अपने विशाल हृदय में समेट कर सरल बना दो। तुम बना सकोगी, यह मुझे विश्वास है।" गम्भीरता पूर्वक शीला के नेत्रों में नेत्र डाल कर विजय ने कहा।

"आप क्या कह रहे हैं बाबू! मैं समझ नहीं पा रही हूँ। मेरा

मैला कुचैला आँचल आपके रंग में रँग कर स्वर्णिम बन जाने के लिए चिरकाल से तरस रहा है। मेरा रिक्त हृदय आपकी स्वप्निल प्रतिमा को धारण किये न जाने कब से किसी प्रकार इस जिन्दगी के भार को ढोता हुआ चला जा रहा है। परन्तु यह नशा कब तक काम देगा बाबू? इसे आपके आश्रय की आवश्यकता है। इस बार मैं आपको योंही भाग जाने नहीं दूंगी।" और इतना कहते हुए शीला ने कस कर विजय का हाथ अपने दोनों हाथों में पकड़ लिया।

"घबराओ नहीं शीला! मैं इस बार दृढ़ निश्चय करके आया हूँ कि मैं घर पहुँचते ही अपने और तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव पिता जी के सम्मुख रख दूंगा। मैं तुम्हें इस बार अकेला छोड़कर जाने वाला नहीं।" विजय बाबू ने शीला की कमर पर हाथ रखते हुए कहा।

शीला इस समय सचमुच ही भयभीत सी हो उठी और उसकी आकुलता को परखते हुए विजय बाबू फिर मधुर मुस्कान भरे नयन शीला के गुलाबी कपोलों पर पसारते हुए धीरे से बोले, "क्या अपने विजय से विश्वास उठता जा रहा है शीला?"

"यह बात नहीं है बाबू! परन्तु मुझे अभी-अभी कुछ ऐसा लगा जैसे कोई महान शक्ति आपको मुझसे छीन कर लिए जा रही है। मैं रोकर, गिड़ गिड़ाकर, हाथ जोड़ कर, उसके पैरों पड़कर प्रार्थना कर रही हूँ कि वह तुमको मुझे वापस लौटा दे परन्तु वह मुझे पगली कह कर एक दम खिलखिला कर हँस दी।" उसी प्रकार भयभीत स्वर में शीला ने कहा।

"यह सब तुम्हारे मन में उठने वाली शंकाओं के फल स्वरूप हो रहा है। अच्छा अब चलो। पिता जी शहर से आ चुके होंगे और मुझे कल लखनऊ लौट जाना है। मैं आज ही रात्रि को यह सब कुछ निश्चय कर देना चाहता हूँ।" गम्भीरता पूर्वक विजय बाबू ने कहा—दोनों उठकर गांव की ओर चल दिये।

बैठक पर पहुँचते ही चौधरी रणधीर सिंह जी ने हँसते हुए कहा,

"विजय भय्या! जमानत करा तो दी मुन्नू की लेकिन बड़ी ही मुसीबत उठानी पड़ी।"

"ऐसे नीच व्यक्ति की जमानत नहीं करानी चाहिए थी आपको पिता जी!" विजय बाबू ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"ठीक है बेटा! तुम हर चीज को सिद्धांत रूप में लेते हो और मैं व्यक्ति के रूप में। मुन्नू लाख बुरा है परन्तु वह लाला छगन मगन का पुत्र है और लाला छगन मगन लाख बुरा है लेकिन वह हमारा यार है। हमने अपना फर्ज निभाया है।" और इतना कह कर चौधरी रणधीर सिंह ने गर्व के साथ अपना मस्तक ऊपर को कर लिया।

विजय बाबू या शीला ने एक शब्द भी उनके विचारों की आलोचना करने के लिए नहीं कहा और वह मौन हो गये। थोड़ी देर इसी प्रकार मौन रहने के पश्चात विजय बाबू ने बहुत गम्भीर होकर कहा—"चलिए जो हुआ सो अच्छा ही हुआ और जो होगा वह भी चलता ही रहेगा। परन्तु मैं इस बार लखनऊ से अपने विवाह के विषय में आपका आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए आया हूँ।"

"जरूर बेटा! जरूर! मेरी भी यह अंतिम अभिलाषा है। तुमने यशस्वी बन कर अपने खांदान की मान मर्यादा को बढ़ाया इससे मेरे हृदय को तुमने अपार शांति प्रदान की। अब मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि तुम विवाह करके इस उजड़ते हुए खांदान को आबाद करो।" और इतना कहकर वह विजय बाबू के सामने वाले मूढ़े पर बैठ कर उत्सुकता से विजय के मुख पर देखने लगे।

शीला इसी समय सकुचा कर उठ खड़ी हुई और चुपके से बैठक से बाहर होकर चबूतरे से उतर गई। विजय बाबू ने अपने हृदय में सम्पूर्ण साहस समेट कर शीला से विवाह करने का अपना निश्चय पिताजी के सम्मुख रख दिया।

प्रस्ताव सुन कर चौधरी रणधीर सिंह को पसीना आ गया। उनका समस्त बदन काँपने लगा। उनके नेत्र आकाश की ओर उठे तो मानो

मैला कुचैला आँचल आपके रंग में रँग कर स्वर्णिम बन जाने के लिए चिरकाल से तरस रहा है। मेरा रिक्त हृदय आपकी स्वप्निल प्रतिमा को धारण किये न जाने कब से किसी प्रकार इस जिन्दगी के भार को ढोता हुआ चला जा रहा है। परन्तु यह नशा कब तक काम देगा बाबू ? इसे आपके आश्रय की आवश्यकता है। इस बार मैं आपको योंही भाग जाने नहीं दूंगी।" और इतना कहते हुए शीला ने कस कर विजय का हाथ अपने दोनों हाथों में पकड़ लिया।

"घबराओ नहीं शीला ! मैं इस बार दृढ़ निश्चय करके आया हूँ कि मैं घर पहुँचते ही अपने और तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव पिता जी के सम्मुख रख दूंगा। मैं तुम्हें इस बार अकेला छोड़कर जाने वाला नहीं।" विजय बाबू ने शीला की कमर पर हाथ रखते हुए कहा।

शीला इस समय सचमुच ही भयभीत सी हो उठी और उसकी आकुलता को परखते हुए विजय बाबू फिर मधुर मुस्कान भरे नयन शीला के गुलाबी कपोलों पर पसारते हुए धीरे से बोले, "क्या अपने विजय से विश्वास उठता जा रहा है शीला ?"

"यह बात नहीं है बाबू ! परन्तु मुझे अभी-अभी कुछ ऐसा लगा जैसे कोई महान शक्ति आपको मुझसे छीन कर लिए जा रही है। मैं रोकर, गिड़ गिड़ाकर, हाथ जोड़ कर, उसके पैरों पड़कर प्रार्थना कर रही हूँ कि वह तुमको मुझे वापस लौटा दे परन्तु वह मुझे पगली कह कर एक दम खिलखिला कर हँस दी।" उसी प्रकार भयभीत स्वर में शीला ने कहा।

"यह सब तुम्हारे मन में उठने वाली शंकाओं के फल स्वरूप हो रहा है। अच्छा अब चलो। पिता जी शहर से आ चुके होंगे और मुझे कल लखनऊ लौट जाना है। मैं आज ही रात्रि को यह सब कुछ निश्चय कर देना चाहता हूँ।" गम्भीरता पूर्वक विजय बाबू ने कहा—दोनों उठकर गाँव की ओर चल दिये।

बैठक पर पहुँचते ही चौधरी रणधीर सिंह जी ने हँसते हुए कहा,

"विजय भय्या ! जमानत करा तो दी मुन्नू की लेकिन बड़ी ही मुसीबत उठानी पड़ी ।"

"ऐसे नीच व्यक्ति की जमानत नहीं करानी चाहिए थी आपको पिता जी !" विजय बाबू ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

"ठीक है बेटा ! तुम हर चीज को सिद्धांत रूप में लेते हो और मैं व्यक्ति के रूप में । मुन्नू लाख बुरा है परन्तु वह लाला छगन मगन का पुत्र है और लाला छगन मगन लाख बुरा है लेकिन वह हमारा यार है । हमने अपना फर्ज निभाया है ।" और इतना कह कर चौधरी रणधीर सिंह ने गर्व के साथ अपना मस्तक ऊपर को कर लिया ।

विजय बाबू या शीला ने एक शब्द भी उनके विचारों की आलोचना करने के लिए नहीं कहा और वह मौन हो गये । थोड़ी देर इसी प्रकार मौन रहने के पश्चात विजय बाबू ने बहुत गम्भीर होकर कहा—"चलिए जो हुआ सो अच्छा ही हुआ और जो होगा वह भी चलता ही रहेगा । परन्तु मैं इस बार लखनऊ से अपने विवाह के विषय में आपका आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए आया हूँ ।"

"जरूर बेटा ! जरूर ! मेरी भी यह अंतिम अभिलाषा है । तुमने यशस्वी बन कर अपने खांदान की मान मर्यादा को बढ़ाया इससे मेरे हृदय को तुमने अपार शांति प्रदान की । अब मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि तुम विवाह करके इस उजड़ते हुए खांदान को आबाद करो ।" और इतना कहकर वह विजय बाबू के सामने वाले मूढ़े पर बैठ कर उत्सुकता से विजय के मुख पर देखने लगे ।

शीला इसी समय सकुचा कर उठ खड़ी हुई और चुपके से बैठक से बाहर होकर चबूतरे से उतर गई । विजय बाबू ने अपने हृदय में सम्पूर्ण साहस समेट कर शीला से विवाह करने का अपना निश्चय पिताजी के सम्मुख रख दिया ।

प्रस्ताव सुन कर चौधरी रणधीर सिंह को पसीना आ गया । उनका समस्त बदन काँपने लगा । उनके नेत्र आकाश की ओर उठे तो मानो

दृष्टि आकाश में गुभ कर रह गई। एक शब्द भी मुख से न बोल सके, मौन, बिलकुल मौन। विजय बाबू भी शांत थे। वह पिताजी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आये थे, उसके मिलने की आशा न रही। चुप चाप खड़े होकर अन्धकार में चबूतरे से नीचे उतरे और मौन जंगल की तरफ चल दिये। न जाने कितनी दूर निकल गये। चलते-चलते वही नहर का किनारा आ गया जहाँ अभी कुछ देर पूर्व उन्होंने शीला की कमर पर हाथ फेरते हुए उसे जीवन-संगिणी बनाने का वचन दिया था। वह अपने को संभाल न सके। चुप चाप वहीं घाट के एक पत्थर पर बैठ गये।

चौधरी रणधीरसिंह ने समझा था कि जमीदारी का अन्त ही उनके विजय के जीवन की शांति का महान लक्ष होगा परन्तु ऐसा न हो सका। विजय क्या चाहता था, यह उनसे छुपा न रहा। परिवार की परम्परा का यह नव-निर्माण मानो प्राचीन श्रृंखलाओं पर हथौड़े मार-मार कर उन्हें छिन्न-भिन्न कर देना चाहता था। यह श्रृंखलाएँ चौधरी रणधीरसिंह को विजय से कुछ कम प्रिय नहीं थीं, बल्कि कहीं अधिक प्रिय थीं, और इन्हीं की भेंट एक दिन उन्होंने विजय भय्या को चढ़ा दिया था; परन्तु आज वह साहस उनमें नहीं था। जीवन के जिस उठान पर उनका विजय पहुँच चुका था, चौधरी साहब ने अपने को उससे पछड़ा हुआ पाया। उन्हें विश्वास था कि विजय जिस पथ पर जा रहा है वहीं पर लोक-हित और मानव-हित की महान चुनौतियाँ थीं।

परन्तु चौधरी साहब के पैर लड़खड़ा उठे। वह अपने को स्थिर न रख सके। समाज और धर्म के प्रति विद्रोह की चिंगारी लेकर अपने ही हाथ से अपने घर में लगा लेने का सहास वह अपने में न बटोर सके। मन ने कहा कि विजय ठीक है, मस्तिष्क ने कहा कि विजय को आशीर्वाद दो, परन्तु हृदय प्रकम्पित हो उठा। पुत्र की ममता बार-बार उमड़ कर आई परन्तु साहस न जुटा सकी। विजय को इस जीवन में प्रसन्न करना मानो उनके अधिकार में नहीं था। परन्तु इस बार

रणधीरसिंह ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह विजय के मार्ग का कांटा नहीं बनेंगे। विजय के जीवन की उमंगों का प्रवाह रोकने का साहस उनमें नहीं था और न उसे रोकना ही वह चाहते थे। उन्होंने समझ लिया कि उनके परिवार का कायाकल्प होने जा रहा है। पुराना परिवार अपनी परम्पराओं और रूढ़ियों के साथ समाप्त हो चुका। अब नए परिवार की नींव रखी जा रही है और यह विजय रखेगा।

चौधरी साहब एक दम प्रफुल्लित हो उठे और उन्होंने इधर-उधर देखा कि विजय नहीं था। वह बैठक से बाहर निकल कर सीधे शीला के मकान पर गये। शीला चुपचाप अकेली मकान से बाहर छप्पर में खटिया बिछाए उस पर लेट रही थी। चौधरी साहब को देख कर खड़े होते हुए उसने प्रणाम किया।

रणधीरसिंह—"प्रणाम बिटिया! क्या विजय इधर नहीं आया?"

"जी नहीं ताया जी।" शीला ने उत्तर दिया।

"मैं तुम्हें आशीर्वाद देने आया हूँ बिटिया।" और शीला ने सिर झुका लिया। उसे आशीर्वाद मिल गया ताया जी का, इससे अधिक और वह क्या पा सकती थी। उसने धीरे से नीचे झुक कर ताया जी के चरण छू लिए। शब्द दोनों के मुख से एक भी न निकला। इसके पश्चात् चौधरी साहब वहाँ से चले गये।

अब वह चंदनपुर में नहीं रह सकते थे। चंदनपुर की सीमा से बाहर निकल कर उन्होंने एक बार ग्राम को नमस्कार करते हुए कहा, "जन्मभूमि! तुझे नमस्कार है। तेरे ही संरक्षण में मैं अपने विजय और अपने परिवार को छोड़ रहा हूँ। उनकी रक्षा करना। मैं बूढ़ा हो चुका और विजय के नवीनतम विचारों का बोझा सँभालने में मैं आज असमर्थ हूं। परन्तु तुमने तो संसार का उत्थान और पतन अपनी आँखों से देखा है, तुमने तो भीषण से भीषण परिस्थितियों को हँस कर अपने सीने पर से गुजार दिया है और तुम इसका भी संरक्षण कर सकोगे ऐसा मेरा विश्वास है।

विजय जिस दिशा में बढ़ रहा है, उसका विरोध होगा, परन्तु तुम उसे शक्ति प्रदान करना कि वह उस विरोध का हँसते-हँसते सामना कर सके।"

इतना कहकर उन्होंने चंदनपुर की भूमि से मिट्टी उठा कर अपने मस्तक से लगा ली और फिर मुड़ कर चंदनपुर की ओर न देखा।

विजय बाबू को नहर की पटरी पर बैठे काफी समय हो गया था। वह अचानक निद्रा से जाग्रत से होते हुए गाँव की ओर लपके तो गाँव में घुसते ही उनकी भेंट शीलकुमारी से हुई। शीला ने चौधरी साहब के अभी-अभी उसके घर आकर आशीर्वाद देने की घटना विजय को सुनाई। विजय का तन रोमांचित हो उठा और उन्होंने अपने दोनों हाथों के बीच शीला के कपोलों को सम्भालते हुए नेत्रों में नेत्र डाल कर कहा, "तुम्हारी विजय हुई शीला! तुम्हारी नहीं मानवता की विजय हुई। परन्तु पिता जी कहाँ हैं?"

"अभी अभी तो गये हैं। शायद घर गये हैं।" कुछ सकुचाकर शीला ने कहा। दोनों लपक कर घर पहुँचे। चौधरी साहब वहाँ नहीं थे। सारा गाँव खोज डाला परन्तु वह कहीं पर भी नहीं थे।

चन्दनपुर के लोग चारों ओर चौधरी साहब की खोज करने के लिए निकल पड़े परन्तु उनका कहीं पर भी पता नहीं चला।

खांदान के नाम पर मर मिटने वाला यह उसी चौधरी-वंश का अंतिम सपूत था जिसे सन् सत्तावन के पश्चात चन्दनपुर इनाम में मिला था और आज वह उस चन्दपुर को चन्दनपुर वालों के लिए छोड़ कर चल दिया, नंगे सिर, नंगे पैर, केवल एक कुर्ता और धोती पहिन कर। उसे गर्व था कि उसने चन्दनपुर की चोरी नहीं की, डाका नहीं डाला, जो कुछ चन्दनपुर से प्राप्त किया था, संचय किया था वह चन्दन पुर के ही लिए छोड़ दिया। साथ ही अपने हृदय के लाल विजय को भी चन्दनपुर की सेवा के लिए समर्पित कर दिया---



1.6.57	7.6.57		
4.3.58	20.3.58		
1.8.60	3.8.60		
17.8.60	27.9.60		
14-11-60	9.12.60		
28.12.60	14.1.61		
14.3.62	25.3.62		
4.8.62	10.10.62		
7-7-63	28.7.63		
10.1.64	8.2.64		
10.2.64	~~14.3.66~~		
18.4.66			
26.11.86			

H83 Y4B 19613

Y4B

H83 Y4B 19613

7546:-18.4.66

14437. 25.1.76

15485.7.2.79

014 F 26 7/86